ISSN : 2321-3922
जुलाई– 2022
RNI-BIHHIN05394
वर्ष – 8 अंक–29

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.susambhavya.com

सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका

सुसंभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

जुलाई–सितम्बर– 2022

प्रकाशन : 27 जनवरी 2013

RNI No. : BIHHIN05394/2015

ISSN - 2321-3922

वर्ष–8, अंक–29

श्री दयानन्द जायसवाल
संस्थापक–सह–प्रधान संपादक

डॉ. विजय कुमार सिंह
संयोजक

श्रीमती अनिता जायसवाल
संरक्षक

डॉ. गिरिजा शंकर मोदी
सम्पादक मंडल

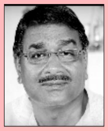

अश्विनी प्रजावंशी
सम्पादक मंडल

श्रीमती छाया पाण्डेय
संस्थापक सदस्य

श्रीमती संयुक्ता गुप्ता
संस्थापक सदस्य

कार्यालय प्रभारी

बिरजू कुमार
भागलपुर
7004435995

सुमित भारती
कोलकाता
8757689138

सौरभ भारती
दिल्ली
8699170450

स्वत्वाधिकारी व प्रकाशक :

श्री दयानन्द जायसवाल

संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं
समस्त व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक।
रचनाओं के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र
भागलपुर।

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल

मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303
वेबसाईट : www.susambhavya.com
ई–मेल : dnj.sambhavya@gmail.com

RNI No. : BIHHIN05394/2015
ISSN - 2321-3922
जुलाई– सितम्बर–2022

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

वेबसाईट : www.susambhavya.com

आमंत्रण

'सुसंभाव्य' अंतर्राष्ट्रीय स्तर की हिंदी त्रैमासिक है जो वर्तमान समय में विश्व के विभिन्न देशों के पाठक सहित भारत के लगभग सभी शहरों के सहृदयों का स्नेह इस पत्रिका को प्राप्त है।

इसका ई–संस्करण विश्वग्राम के सभी सुधी पाठकों एवं स्नेहीजन के लिए www.susambhavya.com पर सहजता के साथ सुलभ है। मुद्रित संस्करण यथासंभव रचनाकारों, हिंदी के लिए समर्पित संस्था और संस्थानों को उपलब्ध कराया जाता है।

श्रेष्ठ चिंतन सहज–सरल अभिव्यक्ति के माध्यम से जब कोई व्यक्ति सार्वभौम होकर जन–गण में व्याप्त हो जाता है तब वह व्यक्ति से व्यक्तित्व और व्यक्तित्व से संस्थान बन जाता है। ऐसे महान विभूतियों से आग्रह है कि अक्टूबर 2022 अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रनचाएं अपने पत्राचार–पता के साथ, कोरियर या डाक से संपादक के पते पर भेजें।

आइये सब मिलकर सामाजिक सरोकार से संबंधित सार्वभौम, सार्वजनीन एवं श्रेष्ठ साहित्य के माध्यम से धर्म–मज़हब, जाति, लिंग, वर्ण, वर्ग और नस्ल–भेद की दीवार हटा दें और सिर्फ इंसान बनें तथा उत्तम ज्ञान एवं श्रेष्ठ आचरण से स्वयं का परिष्कार कर विश्वग्राम का सौभाग्य बनें।

संपादक
सुसंभाव्य हिन्दी त्रैमासिक
E-mail : dnj.sambhavya@gmail.com
Mob.: 9931240303

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303

नोट : कृपया अपनी रचनाएँ kurtidev -010 में ही ई मेल से भेजें अन्यथा स्वीकृत नहीं होगी।

अनुक्रम

पुरोवाक्	संस्थापक की कलम से	दयानन्द जायसवाल	05
समीक्षा	साँकल, सपने और सवाल	निर्मला डोसी	06
कविता	यहाँ किसी बात का भरोसा नहीं	कुमार विश्वबन्धु	07
समीक्षा	मनुष्यता को हर हाल में बचाए रखने की मुहिम	वसन्त राघव	08
ग़ज़ल		विज्ञानव्रत	10
समीक्षा	क्रूर समय की समीक्षा करती कहानियाँ	सूर्यकान्त नागर	11
कविता	दावानल	शैलेन्द्र शरण	12
समीक्षा	दृष्यन्त की परंपरा को छूती ग़ज़लें	राजेन्द्र वमा	13
कविताएँ		प्रतिभा चौहान	14
समीक्षा	थोचित समीक्षा की तलाश	डॉ० शिवचन्द्र प्रसाद	15
समीक्षा	घोंटुल से बिग बॉस तक का सफर	डॉ० अरुण कुमार	17
गीतिकाएँ		कैलाश मनहर	18
समीक्षा	भगवती प्रसाद द्विवेदी की काव्य–संवेदना	जितेन्द्र कुमार	19
समीक्षा	तुम भी नहीं: नये अंदाज की तहरीर	धर्मेन्द्र गुप्त	21
लक्ष्यगीत	असफलता है एक चुनौती	डॉ० शरद नारायण खरे	22
चिंतन	साक्षात्कार संवेदनशीलता ही नहीं चरित्र का भी मूल्यांकन करता है।	सीताराम गुप्ता	23
दोहे	महाशिवरात्रि	गौरी शंकर वैश्य 'विनम्र'	24
समीक्षा	भारतीय संस्कृति का उन्नायक उपन्यास	डॉ० अवधेश चन्दसौलिया	25
आलेख	जयशंकर प्रसाद के नाटकों	डॉ० अमर सिंह 'बघान'	26
ग़ज़लें		दिवाकर पाण्डेय 'चित्रगुप्त'	27
आलेख	घुमन्तु जाति देवार और उनका वाचिक सहित	तुलसी देवी तिवारी	28
कविता	कब बसंत आया	गौतम पाण्डेय	30
समीक्षा	साक्षात्कार के आइने में : कमल कुमार	दयानन्द जायसवाल	31
समीक्षा	विश्व के प्रमुख साहित्य चिन्तक	दयानन्द जायसवाल	32
समीक्षा	मचान: एक सामाजिक उपन्यास	कुलदीप शर्मा	33
आलेख	वासुदेव बलवन्त फड़के	डॉ० उषा निगम	35
लघुकथा	जमाना, पुरस्कार	अनुपमा तिवारी	36
आलेख	अटलजी के काव्य की उपायदेयता	अवधेश चन्दसौलिया	37
लघुकथा	लंच बॉक्स	मनोरंजन सहाय सक्सेना	38
आलेख	अमृत महोत्सव का नुक्कड़	डॉ० अरुण तिवारी गोपाल	39
लघुकथा	डिजिटल करेंसी	संजय वर्मा 'दृष्टि'	40
आलेख	छायावादी युग में एक प्रमुख स्तंभ: महादेवी वर्मा	डॉ० मंजरी पाण्डेय	41
संस्मरण	सुसंभाव्य की संरक्षिका : मेरी मम्मी	जैन्नी शबनम	43
कहानी	गोष्ठी के बहाने	अश्विनी कुमार दुबे	47
गीत		संदीप सरस	48
कहानी	वृक्ष गंधा	रजनी शर्मा बस्तारिया	49
समीक्षा	जीवन वीणा	रवीन्द्र गिन्नौर	50
आलेख	स्वतंत्रता से पूर्व प्रकाशित तीन पुस्तकें	डॉ० सम्राट सुधा	51
साहित्यिक समाचारा	पुस्तक लोकार्पण समारोह		52

ये ग़ज़रे तारों वाले

इस सोते संसार बीच
जगकर सजकर रजनी बोले
कहाँ बेचने ले जाती हो
ये ग़ज़रे तारों वाले

मोल करेगा कौन
सो रही हैं उत्सुक आँखें सारी
मत कुम्हलाने दो
सूनेपन में अपनी निधियाँ न्यारी

निर्झर के निर्मल जल में
ये ग़ज़रे हिला–हिला धोना
लहर हहर कर यदि चूमें तो
किंचित् विचलित मत होना

होने दो प्रतिबिम्ब बिचुम्बित
लहरों में ही लहराना
लो मेरे तारों के ग़ज़रे
निर्झर स्वर में यह गाना

यदि प्रभात तक कोई आकर
तुमसे हाय! न मोल करे
तो फूलों पर ओस रूप में
बिखरा देना सब ग़ज़रे ।

राम कुमार वर्मा

पुरोवाक्

दयानन्द जायसवाल

संस्थापक की कलम से

भारतीय साहित्य भारतीय संस्कृति के आधार पर विकसित हुआ है। इस संस्कृति में भारतीयता की बीज समाहित है। साहित्य का जन्म समाज में ही संभव हो सकता है। इसलिए मानवीय संवेदनाओं को हम उनकी अभिव्यक्तियों के माध्यम से समझ सकते हैं। यह अभिव्यक्ति समाज और काल में अलग–अलग रूपों में प्रकट हुआ है। लेकिन समय की पहली धारा में जो प्रभाव देखे गये हैं, वह सभ्यता के रूप में गिरे–पड़े, टूटे–फूटे प्राप्त ऐतिहासिक खोज में देखे जा सकते हैं। जब व्यक्ति अपने आपको सामाजिक जीवन में ढालने लगा, तबसे वह समग्र एकता में प्रदर्शित होता है। इस प्रदर्शन की सीमा को हड़प्पा व मोहनजोदड़ो की प्राप्ति से जोड़ सकते हैं। उनकी अभिव्यक्ति रहन–सहन एवं संवेदनाओं से जान सकते हैं।

साहित्यकार भाषा में केवल अपने को 'स्वान्त: सुखाय' अभिव्यक्त मात्र ही नहीं करता है, अपितु सोद्देश्यपरक रचनाओं के माध्यम से अपने को विचार एवं भाव–सम्प्रेषण के स्तर पर एक बृहत्तर काल सापेक्ष समाज से जोड़ता भी है। साहित्यकार भाषा का भी प्रयोक्ता होता है। वह अपनी भाषा विशेष के अत्यन्त प्रायोत्पादों से अपने को जोड़ता है। इस तरह भाषा और साहित्य एक अनिवार्य सहजात सामाजिक कर्म बन जाते हैं, जिसमें देश की संस्कृति झंकृत होती है, राष्ट्रीय अस्तित्व का रसबोध श्रृंगारित होता है। जब हम विशद् भारतीय आर्थिक समाज की संकल्पना से रू–ब–रू होते हैं, तो स्वभावत: ही हम चाहे–अनचाहे उस भाषिक अस्मिता की बातें करते हैं, जो भाषा और साहित्य के धरातल पर दूरे देश में एक व्यावहारिक एवं सैद्धांतिक, आर्थिक, वैचारिक, भावनात्मक एवं सांस्कृतिक एकता एवं एकात्मकता में जोड़ती है। कभी यह काम संस्कृत भाषा ने किया था, कालान्तर में पालि–प्राकृतों ने काफी कुछ हद तक इस कार्य को निभाया और फिर मध्ययुगीन राजनैतिक, सामाजिक एवं जातीय समीकरणों में जबर्दस्त उथल–पुथल हो जाने के फलस्वरूप यही कार्य हिन्दी ने किया और अब तो स्वतंत्रता–प्राप्ति के पश्चात् संवैधानिक एवं व्यावहारिक धरातल पर हिन्दी की राष्ट्रकार्य भूमिका असंदिग्ध तौर पर स्पष्ट हो चुकी है। आज हिन्दी भारतीय भाषिक चेतना एवं भारतीय साहित्य की संवाहिका बनी हुई है और हिन्दी उत्तरदायित्व पूरी संजीदगी और आदान–प्रदान व परस्पर वैचारिक–भावात्मक विनिमय बोध की दृष्टि से निभा रही है। किन्तु मातृभाषायी सहिष्णुता भारतीय साहित्य का प्राण है। भारत में एक विशिष्ट भाषा–भाषी जब किसी दूसरे भाषायी समाज में जाकर बसता है, तो भारतीयों की सांस्कृतिक और पारिवारिक सहिष्णुता के फलस्वरूप उसपर अपनी मूलभाषा (मातृभाषा) को त्याग देने या छोड़ देने का कोई दबाव नहीं होता, अपितु वह अपने बसनेवाले क्षेत्र में उसकी भाषा सीखकर द्विभाषी हो जाता है। भारत की भाषिक सहिष्णुता भारतीय साहित्य की परिकल्पना केवल मूल में विद्यमान है। कुल मिलाकर भारतीय साहित्य को जानने के लिए सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य की समस्याओं को समझना होगा।

भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले देश में साहित्य के प्रति आमआदमी की रुचि का अभाव है। ऐसी स्थिति में जब अपनी ही भाषा में पाठक का अभाव हो तो वह दूसरी भाषाओं की साहित्य में रुचि कैसे दिखा सकता है। इसका मूल कारण है भारत में अंतर प्रान्तीय स्तर पर साहित्यिक सम्मेलनों का अभाव। यदि अखिल भारतीय स्तर पर एक ऐसी पत्रिका की व्यवस्था हो, जिसमें क्रमश: लगातार उन सभी भाषाओं के साहित्य को मूल और अनुवाद सहित प्रकाशित किया जाय, तो इस प्रकार पाठक अन्य भाषा के साहित्य से भी परिचित हो सकता है। इस प्रकार प्रत्येक क्षेत्र से अन्य भाषाओं में लेखन, अध्ययन और शोध करनेवालों को पुरस्कृत करने की योजनाएँ आए तो बहुत–से पाठकों या लेखक दूसरी भाषा के साहित्य में अधिक रुचि दिखाएँगे। किसी भी देश का साहित्य उस देश की समस्याओं का चित्रण पर केन्द्रित होता है। इसलिए यह सरकारी और गैरसरकारी दोनों स्तरों पर पर्याप्त प्रयास की जरूरत है।

साहित्य समाज में उत्पन्न होता है और फिर समाज को प्रभावित करता है। जो साहित्य ऐसा नहीं करता, उसे सच्चे अर्थों में साहित्य नहीं माना जा सकता। साहित्य की सबसे बड़ी देन अपने युग के मूल्यों की अभिव्यक्ति के साथ–साथ मूल्यों की रक्षा करना है। जब हम संस्कृति, राष्ट्र या समाज के संदर्भ में मूल्यों का प्रयोग करते हैं, तो हमारा लक्ष्य उन मानदंडों, नियमों या सिद्धांतों से होता है, जिन्हें एक संस्कृति, राष्ट्र या समाज स्वीकार चुका है और अनुपालन कर रहा है। भक्तिकालीन साहित्य के केन्द्र में भक्ति, दया, करुणा, सौहार्द्र, पारस्परिक सद्भाव, नारी का महत्त्व जैसे सामाजिक मूल्यों के साथ–साथ आत्मा का उन्नयन और ईश्वर–प्राप्ति जैसे उच्चतर मूल्य निर्धारित किया गया। रीतिकाल में विलासिता को महत्त्व मिला। फलत: मूल्यों की दृष्टि से इस काल में बहुत सार्थकता नहीं प्राप्त हुई। आधुनिक काल का हिन्दी साहित्य भारतीय नवजागरण और अन्य सुधारवादी आंदोलनों के गठन पर बल दिया। इस काल में सोच के केन्द्र में मानव आ गया। सामाजिक व्यवस्था का एक नया रूप सामने आया। इस प्रकार समाज और साहित्य सदैव मानवहित में मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा के प्रति सचेत रहा।

भाषायी तकनीकी विकास ने वैश्विक स्तर पर हिन्दी को नया आयाम दिया, जो संभावनाओं का नया इतिहास रचने लगा। व्यवस्था के बीच पनपी सारी व्यथाओं को झेलते हुए घने कोहरे के बीच गुलाबी धूप की तरह आज हिन्दी खिलखिला रही है। कुल मिलाकर साहित्य अपना बहिरंग भले बदलता हो, पर उसकी आत्मा एक है। सांस्कृतिक एकता के कारण हम सब मूल परंपराओं से जुड़े हुए हैं। इस प्रकार भारतीय साहित्य वह समूह गीत है, जिसकी हर एक आवाज़ अलग होते हुए भी मिलकर एक धुन बनती है–भारतीय धुन।

समीक्षा :

साँकल, सपने और सवाल

निर्मला डोसी
भीलवाड़ा

पुस्तक का नाम, उसका कवर और उसका विषय सभी को मद्देनजर रखें तो यह पुस्तक उन संजीदा पाठकों के लिए है, जो स्त्री के सवालों, उसकी चिंताओं के पक्षधर हैं, साथ ही उसके सपनों और सपनों की राह में जड़ी सांकलों से भी अपरिचित नहीं है। पुस्तक के समर्पण पृष्ठ के शब्द लेखिका सुधा अरोड़ा का मन्तव्य स्पष्ट कर देते हैं कि 'उम्मीद अभी बाकी है।'

युवा पीढ़ी के उन लड़कों को जो सामाजिक संरचना की सांकलों को तोड़ेंगे। आधी आबादी के हक में लड़कियों के साथ खड़े होंगे और बेहतर परिवार तथा समतामूलक समाज के लिए आवाज बुलंग करेंगे।

युवा पीढ़ी का आह्वान करके उन्होंने अपनी दूरदृष्टि का परिचय ही नहीं दिया, लेखन की सार्थकता को भी साधा है। 'सांकल सपने और सवाल' पुस्तक में स्त्री–विमर्श की अग्रणी लेखिका सुधा अरोड़ा के पिछले कई वर्षों के लेखन से चुने हुए चुनिंदा आलेख संगृहीत हैं। लेखिका की प्रखर दृष्टि और उनका तथ्यपरक सामाजिक विश्लेषण एक दूसरे के बरअक्स खड़ा दिखता है।

आलेख में आज के समय के सामयिक तथा सुलगते विषयों की गहन पड़ताल की गई है। धर्म, मीडिया, फिल्म, साम्प्रदायिकता से लेकर समलैंगिकता, तेजाबी हमले, शिक्षित लड़कियों की आत्महत्या, स्त्री की संपत्ति के अधिकार तथा महिलाओं के घरेलू तथा सामाजिक शोषण पर रचनाकार की पैनी नजर है।

नारीवाद का कोई विवादास्पद झंडा उठाए बिना खुले परिवर्तनशील और आधुनिक समाज में वे व्यावहारिक स्तर पर स्त्री को पुरुष के बराबरी का सम्मानजनक हिस्सा दिलवाने में यकीन रखती है। इसलिए समाधान के लिए अंत में कुछ व्यावहारिक सुझाव थमाए गये हैं।

'स्त्री मुक्ति का पहला चरण देहमुक्ति से ही शुरू होगा' का परचम लहरानेवाले लोगों को प्रतिपादित किये हुए 'स्त्री–विमर्श' को ही मानक बना लेंगे तो साहित्यिक स्त्री–विमर्श में धुंध ही दिखेगी। यह सच है कि यह धुंध हटनी चाहिए, जिसमें स्त्री को केवल बुजुर्वा समाजशास्त्र और बाजार के देहशास्त्र के बीच रखकर ही न देखा जाए, बल्कि उसकी मुक्ति के प्रश्नों को अधिक समग्रता से खोजा जा सके। अंततः यह प्रश्न हमें उस दिशा की ओर ले जाते हैं, जहाँ तय करना है कि हम कौन सा और कैसा समाज गढ़ना चाहते हैं।(पृ0 95–96)

पुस्तक में विषयानुसार सात अध्यायों में आलेखों को संजोया गया है। इससे पाठक की एकाग्रता बनी रहती है। आलेखों की विश्लेषण प्रक्रिया को विराम देते हुए कविता के मुलायम लेकिन तीखे शब्दों का मरहम कारगर साबित होता है।

इस तरह के विमर्श की पुस्तकें ट्यूनिंग फोर्क की तरह होती हैं, जो समाज में व्याप्त विसंगतियों पर बड़ी बेबाकी से हाथ धरती है। इसे पढ़ने के लिए पर्याप्त समय ग्रहणशील या उससे भी ज्यादा संवदेनशील भावभूमि की जरूरत है। सधे शब्दों में सटीक कह देने की कला, लेखिका ने सायास नहीं साधी है, यह उनका स्वभाव प्रतीत होता है। तभी तथ्यों तक पहुँचने में उन्हें कोई दुविधा नहीं होती।

'साँकल सपने और सवाल' पुस्तक का नाम है, सपनों पर सांकलें जड़ी हैं। उन्हें खोलने के लिए सवाल जरूरी है और सवाल के लिए बोलना। बोलना इंसान को इंसान बनाता है, पर यही बोलना औरतों को इंसान के दर्जे से गिराकर मैडम या मोहतरमा बना देता है। मैडम या मोहतरमा गालियाँ नहीं हैं, किन्तु जिस अंदाज संबोधनों का इस्तेमाल किया जाता है, वह मुँह खोलनेवाली औरतों के प्रति नजरिया स्पष्ट कर देता है। आज भी आदर्श औरत की तस्वीर यही है कि उसके मुँह पर ताला जड़ा हो। लेखिका कहती हैं कि औरत के मुँह पर लगा ताला जैसे ही खुलता है, औरत अपने को सदियों पुराने गरिमामंडित ऐटिक सिंहासन से गिरा दी जाती है। उसका चरित्र सबसे आसान टारगेट है, किसी भी जुझारु स्त्री पर लांछन लगाकर उसे ध्वस्त कर देना बहुत आसान है।

पुस्तक में स्त्री के संपत्ति–अधिकारों पर विस्तार से चर्चा करने के बाद उसके भावनात्मक पक्ष की कमजोरी को व्यक्त करती कविता 'राखी बाँधकर लौटती बहन' स्त्री के अंतस की नैसर्गिक आर्द्रता का आईना है। यह अलग बात है कि इसी आर्द्रता ने स्त्री को डुबोने में कसर नहीं छोड़ी।

पुस्तक का अंतिम अध्याय बेचैन कर देनेवाला है और इस वीभत्स सच से पर्दा उठानेवाला भी दुनिया भर में औरतों के साथ बर्बरतापूर्ण तथा दोयम दर्जे का व्यवहार होता है। चीन व अरब देश की औरत के बारे में पढ़कर रग–रेशा झनझना उठता है। सुधा अरोड़ा की जुबानी कभी सुनी एक बात स्मृति में कौंध जाती है। वे कहती हैं कि ''लेखन ऐसा हो कि पाठक को बेचैन कर दे, फुर्सत में नींद लानेवाली लोरी जैसा तो कतई ना हो।''

वाकई कुशल वैद्य की तरह लेखिका ने रोगग्रस्त समाज की नाड़ी पर हाथ धरा है। रोगमुक्त समाज की कल्पना तभी साकार हो सकती है, जो रोग की पहचान के साथ, यह भी ज्ञात हो कि किसके प्रयत्नों से रोग मुक्त हुआ जा सकता है।

समस्याओं पर रोचक और ज्ञानवर्धक जानकारी के लिए स्त्री–विमर्श के अध्ययन के लिए यह जरूरी तौर पर पढ़ी जानेवाली पुस्तक है। गौरतलब है कि यह स्त्री–विमर्श पर जैसे ही कोई पुस्तक आती है, उसे पुरुष विरोधी विमर्श से जोड़कर देखने से अच्छा यह हो कि तथ्यों को पढ़ा जाए, समझा जाए, यह बात स्त्री और पुरुष दोनों पर लागू होती है।

प्रथम अध्याय में ही लेखिका कहती हैं–नारीवाद पुरुष विरोधी कतई नहीं है और सभी स्त्रियाँ जानती हैं कि सारा दोष पुरुष का ही नहीं है। दोष उस सामाजिक संरचना का है, जो पुरुष सत्ता को जायज ठहराती है। पुरुष भी अधिपति, मालिक और शोषक बनकर सुकून से नहीं रह सकता। कोई भी नकारात्मक प्रवृत्ति सामने वाले से पहले खुद को नुकसान पहुँचाती है। घर में महिला साथी का कार्यक्षेत्र में महिला सहकर्मियों के साथ दोहरा व्यवहार में न रखकर एक तारतम्य बैठाकर चल सके, एक संतुलन साध सकें तो जीवन ज्यादा कोमल व समरसता से आगे बढ़ता है। परिवार में शान्ति व सुकून होगा तो समाज भी अकुंठ रहेगा। हम सामाजिक रूढ़ियों और धार्मिक जकड़वादियों की साजिशें पहचान सकें तो हमारी दृष्टि का धुंधलका छट जाएगा।

पुस्तक के नाम पर आए सांकल शब्द का अर्थ खोलती लेखिका कहती हैं कि हमारे यहाँ औरतों के नाम के आगे देवी या रानी का पुछल्ला जोड़कर उसे इंसान से ऊपर उठाकर देवत्व के औहदे पर बिठाने से ही उसकी परेशानियाँ शुरू हुई। देवी तो अधिकार देती है, माँगती नहीं। वर्षों हमारी दादी–नानी ने अपने नाम को पीछे धकेल कर उसके पुछल्ले को चरितार्थ किया। दरअसल ये देवी, रानी वगैरह उनके नाम के आगे लगी सांकलें थीं। जबकि औकात तो उनकी घर में काम करनेवाली दासी से बेहतर नहीं थी।

थोड़ा समय बदला। ज्ञान की रोशनी आई तो उसने सवाल उठाने शुरू किये और फिर सपने देखने भी। सोचने की बात यह है कि जिस देश के बहुसंख्यक समाज में लड़कियों के जिंदा रहने का अनुकूल पर्यावरण नहीं है। स्त्री को मारने के हिंसक और अहिंसक लाख तरीके हैं, उन तमाम विपरीतताओं से जूझते हुए अगर वह जिंदा रह जाती है, अपने जीवन को बचाते हुए अपना होना भी दर्ज करा जाती है, तो उससे बड़ा योद्धा कौन हो सकता है?क्या लेखिका के सुलगते प्रश्न का उत्तर खोजने की जरूरत नहीं है?

'जिसके निशान नहीं दिखते' यह आलेख एक नारीवादी विमर्शकार की महीन दृष्टि से लिखा ऐसा आईना है, जिसको समाज की दशा–दिशा पर एक मनोचिकित्सक के लिखे निष्कर्षों के तौर पर पढ़ा और मनन किया जाना

जरूरी है।

पाठक चाहे स्त्री हो या पुरुष यदि जीवन में व्याप्त अशांति, अवसाद, रोग से निपटने के दूसरे तमाम उपाय करके थक चुका हो, बशर्तें उसे अपने पूर्वाग्रह को एक बार किनारे रखकर इस आलेख को जरूर पढ़ना चाहिए।

भारतीय सामाजिक पृष्ठभूमि और पारंपरिक सीमाओं के बीच स्त्री के लिए एक नैसर्गिक स्पेश की जरूरत है। उसकी जायज माँग इस आलेख का बीजसूत्र है। लेखिका स्पष्ट करती हैं कि हमारी लड़ाई पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना से है। तराजू का एक पलड़ा झुक जाए और दूसरा अपनी ही जगह अड़ा रहे तो संतुलन कैसा बनेगा। पुरुष को सामंजस्य बिठाने के लिए आखिर कोमलता और संवेदना की जरूरत होती है स्त्री में जगते पुरुष की नहीं। पुरुष तो स्त्री कभी बन नहीं सकता, स्त्री का पुरुष बन जाना भी बहुत खतरनाक है। इस उत्तर आधुनिक और ग्लोबल समाज में स्त्री देह के भोगवादी नजरिये के विरुद्ध लेखिका का कारगर हस्तक्षेप रेखांकित किया जा सकता है। बेहद आसान और सरल भाषा में लिखे गये लेखों की पठनीयता एवं प्रतिबद्धता ही इनकी सबसे बड़ी सफलता और सार्थकता है।

(लेखिका–सुधा अरोड़ा, प्रकाशक–लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, मूल्य 608 रु.)

कविता : /

यहाँ किसी बात का भरोसा नहीं

कुमार विश्वबन्धु,
388/8 बेहाला एयरपोर्ट रोड,
मेन गेट, पो.– पर्णश्रीपल्ली, कोलकाता,
मो. 9831198760

भारत के मानचित्र से झाँक रही है जो बूढ़ी औरत
उसके झुर्रीदार कटे पिटे चेहरे में
अपनी माँ को नहीं
उस संभावित चित्र को देखो
जिसे बेचकर तुम मालामाल हो सकते हो
यह बाजार है पार्टनर
और यहाँ जीने का नहीं
बेचने का हुनर आना चाहिए

वहाँ उस पाँच सितारा होटल के बाहर
आधे उजाले आधे अँधेरे से बने फुटपाथ पर
एक किसान अपने परिवार के साथ दम तोड़ रहा है
उसे थोड़ा खाना दो थोड़ा पानी
उतना ही दो जितने से उसकी धुकधुकी कायम रहे
उसे नजदीक से धीरे–धीरे मरते हुए देखो
उसकी सुन्न बुझती लौ सरीखी आँखों में
मौत की बारीक रेखाओं को पढ़ो
और अपनी कविता में कहो
कला कहानी में नहीं
अपने बेचने के हुनर में पैदा करो
यह बाजार है पार्टनर
और यहाँ सब कुछ बिकाऊ है

घर से भागी हुई लड़कियों को
अपनी कविता में जगह मत दो
उन्हें बाजार की तरफ हाँककर ले चलो
उन्हें समझाओ कि बिकने में ही समझदारी है
उन्हें बताओ कि बिकना उनकी आजादी है

इतिहास की लाठी पटकता
बीच सड़क पर खड़ा है एक बूढ़ा जाने कब से
रास्ता रोके हम सबकी उन्नति का प्रगति का
कर रहा है परेशान
गोली दागो साले को मार डालो अभी
फौरन झोंक दो आग में
कैसे भी हो रास्ता साफ करो अपना

अपनी करनी पर बिल्कुल शर्मिन्दा मत होना पार्टनर
क्योंकि यह बेशर्मी की सदी है
और यहाँ आदमी होना सबसे बड़ा गुनाह है
एक तुम्हीं नहीं हो जिसके पास धड़कनेवाला कोई अंग नहीं है
सब चलते फिरते भूसे के पुतले हैं यहाँ
दिमाग सबका खाली है

देखो वहाँ आधी रात नींद से घसीटकर
कोई बच्चों को हाँके लिये जा रहा है स्कूल
देखो वहाँ स्कूल में बैठा दैत्य
बच्चों के मुँह में गले तक ठूँस दे रहा है किताबें
और वहाँ देखो टेलीविजन के सामने बैठी
बच्चों की भकुआई हुई माँओं को
जिनकी भोथराई हुई जान उनके हाथ की
मोबाईल स्क्रीन में कैद है
उन्हें चुटकी भर हँसाने के लिए
कोई लगातार गुदगुदा रहा है उन्हें
उनके पेट में कोंच रहा है डंडे
जबकि कोई पहले ही चुरा ले गया है उनके होंठों की हँसी
और उनकी आँखों में जितना भी नमक बचा था
सब बेचा जा चुका है

बाजार खुल रहा है पार्टनर
और बढ़ रहा है शोर
अब आओ तुम भी उस भीड़ में शामिल हो जाओ
और बेचो जो कुछ बेच सकते हो इस देश का
गाँव से शहर तक हर कहीं हमारी ही चौकसी है
इसलिए लूटो जो कुछ लूट सकते हो इस देश का
यह बाजार है पार्टनर
और यहाँ सोचना मना है

अपने सारे मूल्यों आदर्शों और नैतिकताओं को कूड़े में डालो
फिर अपने बीबी–बच्चों को किसी सर्कस कंपनी के हवाले करो
और सिरे से हलके हो जाओ
सब कुछ बेच–बाचकर निकल चलो दूर
किसी जेल या असाइलम में ले लो शरण

अब यही कुछ एक सुरक्षित स्थान बचे हैं देश में
क्योंकि सारे अपराधी मनोविकारग्रस्त रोगी
हत्यारे जालसाज
निकल चुके हैं बाहर
संसद से सड़क तक हर कहीं घूम रहे हैं खुलेआम
गाँव से लेकर राजधानी तक किसी न किसी ओहदे पर
बैठे ताक रहे हैं षड्यंत्र
गिरा रहे हैं इमारतें काट रहे हैं सड़कें
ढाह रहे हैं मंदिर मस्जिद समाधियाँ,
ठोक रहे हैं काठ की कुर्सियाँ अपनी अपनी

हमला अब हो सकता है किसी भी वक्त
किसी भी स्थान पर
किसी भी शहर किसी भी कस्बा किसी भी गाँव
किसी भी मुहल्ला किसी भी घर किसी भी छाती पर
गिराये जा सकते हैं रसायनिक बम
इसलिए सोना नहीं पार्टनर
हरगिज नहीं सोना
हर हाल में आँखें अपनी खुली रखना हरदम
क्योंकि तुम्हारे सपने में घुसकर भी
कोई ले सकता है तुम्हारी जान
यह बाजार है पार्टनर
और यहाँ किसी बात का कोई भरोसा नहीं।

समीक्षा : /

मनुष्यता को हरहाल में बचाए रखने की मुहिम

वसन्त राघव,
पंचवटी नगर, म.नं. 30, बोईरदादर,
कृषि फार्म रोड रायगढ़ (छ.ग.)
मो. 8319939396

रमेश शर्मा के अबतक तीन कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'उस घर की आँखों से' उनका तीसरा कहानी संग्रह है। इसमें छोटी–बड़ी करीब अठारह कहानियाँ संगृहीत हैं। अधिकांश कहानियों का रचना समय 2020–2021 है। कहानियों का वातावरण देशकाल से उपजी वर्तमान समय की विषम परिस्थितियों से नाभिनाल बद्ध है। निर्मम होता समय, निर्मम होती मनुष्यता, निर्मम होती राजनीति के बीच कोरोना काल से उपजी पीड़ा का मार्मिक चित्रण ज्यादातर कहानियों में हुआ है। मर्मस्पर्शी चित्रों से सराबोर संग्रह की कहानियाँ हमें सोचने को मजबूर करती हैं। कहना न होगा कि मानवीय मूल्यों के इस ह्रास का कारण तलाशने और हमारे अंदर मर रही मनुष्यता का एक बार फिर से जगाने की कहानीकार की विनम्र कोशिश इस संग्रह के माध्यम से हम तक पहुँचती है।

इससे पूर्व उनका पहला कहानी संग्रह 'मुक्ति' और दूसरी कहानी संग्रह 'एक मरती हुई आवाज' भी काफी चर्चित रहे हैं एवं पाठकों द्वारा सराहे गये हैं।

उनके इस तीसरे कहानी संग्रह का शीर्षक 'उस घर की आँखों से' पाठकों के मन में कौतूहल पैदा करता है और पढ़ने के लिए अपनी ओर आकर्षित भी करता है। यह कहानी जीवन में व्याप्त सुख और दु:ख के बीच चीजों को देखने के नजरिये पर केन्द्रित है। सुख में जो चीजें अच्छी लगती हैं, जीवन में दुख का समावेश होने पर कई बार वही चीजें तकलीफ पहुँचाने लगती हैं। सुखनाथ के घर से समुद्र को देखने का जो सुख है, वही सुख सुखनाथ के समुद्र में डूब जाने पर उसकी पत्नी के लिए तकलीफ देह है। यह कहानी जीवन के इस कठोर दर्शन से रूबरू कराती है।

कथा लेखन के क्षेत्र में किसी कथाकार के जीवन से जुड़ी उसकी खुद की पृष्ठभूमि का भी एक अहम रोल होता है। जहाँ तक मैं जानता हूँ, अपनी घुमक्कड़ प्रवृत्ति के कारण रमेश शर्मा को गाँव, शहर और महानगरों से जुड़ी जीवन शैली का पर्याप्त अनुभव है। गाँव में जन्म लेकर युवावस्था तक वहाँ जीवन गुजारना और फिर शहर आकर नौकरी करना उनके अनुभव को विस्तार देते हैं। यह विस्तार उनके भीतर के कथाकार को समृद्ध करता है। इस अनुभविक विस्तार के कारण उनकी कहानियों में भिन्न–भिन्न लोगों के बीच रिश्तों का जो भूगोल है, उसकी व्यापकता को एक बड़ा स्पेश मिलता है।

कोरोना को हम सबने बहुत करीब से देखा है और जिया भी है, ऐसे में कहानीकार का संवेदनशील मन इनसे अछूता कैसे रह सकता है। साम्यवादी और प्रगतिशील विचारधारा के करीब होने के कारण रमेश शर्मा की कहानियों के कथ्य समसामयिक त्रासदपूर्ण घटनाओं के अभी अत्यन्त करीब हैं। उनकी कहानियों में कपोल कल्पनाओं के पंख नहीं है, बल्कि वास्तविकता से जूझने की ललक उनमें अधिक है। रमेश शर्मा की कहानियों के पात्रों में मनोविश्लेषणात्मकता एवं यथार्थपरकता दोनों साथ–साथ चलती है। उनकी कहानियों के पात्र हमारे आसपास के ही हाड़–मांस से बने साधारण लोग हैं, जिनका देश के राजनीति, सामाजिक बदलाव से गहरा सरोकार है। संग्रह की कहानियों की घटनाएँ हमें वर्तमान को और करीब से जानने–पहचानने का अवसर प्रदान करती हैं। उनकी कहानियाँ तेजी से बदलते परिवेश और उससे उपजी हुई समस्याओं को पाठकों के सम्मुख बड़े ही संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत करती हैं। आज के युवाओं का राजनीति की ओर अत्यधिक झुकाव को हम कतई सही नहीं ठहरा सकते। नारेबाजी, झंडे, बैनर हिंसक आंदोलन से युवाओं की प्रतिभा का ह्रास स्वाभाविक है, राजनेता इन्हें एक टूल्स की तरह प्रयोग में लाते हैं। कथाकार की चिंता के मूल में यह बात दिखाई देती है। कथाकार अपनी कहानी 'सोमेंद्र बहादुर उर्फ एस बी की हवाई यात्रा' के माध्यम से युवाओं को राजनीति में अंधभक्ति से दूर रहने की सीख देते नजर आते हैं। उनका मानना है–''राजनीति तो बस मौकों का खेल है।''

उनकी कहानियों में जीवन राग, मानव संघर्ष, अधूरा प्रेम, अतृप्त इच्छाएँ, स्वाभिमान, मानवीय मूल्य, नशा और आधुनिकता से उपजी स्वार्थपरता स्त्री–पुरुषों के जटिल होते संबंध, शिक्षा जिसमें संस्कार कम अर्थोपार्जन पर ज्यादा जोर देती अंग्रेजी शिक्षा के विरोध का स्वर इत्यादि विषय कथ्य के रूप में मुखरित हुए हैं। उनकी कहानियों में जनविरोधी सरकारों की नाकामयाबी, उनके जुमलेबाजी और मीडिया के साथ गठजोड़ कर जनता को झूठे सपने दिखाने से उपजी घटनाओं का एक मार्मिक आख्यान है, जो पाठकों को सोचने पर मजबूर कर सकती है। संग्रह की कहानियों 'रिजवान तुम अपना नोटबुक लेने कब आओगे', 'मृत्यु का श्राप' और 'जैसे किसी ने उनके प्रेम की हत्या कर दी हो' में कोरोना काल से उपजा दु:ख और एकांतिक अवसाद ही नहीं, सरकार की नाकामियों के कारण ऑक्सीजन की कमी से मरते हुए लोग, लॉकडाउन से हजारों–हजार पलायन करते मजदूरों की तकलीफें, बेरोजगार हो चुके युवा, नौकरी में बचे हुए लोगों को अपनी नौकरी जाने का रात–दिन डर, व्यापार में घाटे से व्यापारी द्वारा आत्महत्या करने की घटना, मरा हुआ शासन– प्रशासन और मरी हुई सरकारों का संपूर्ण लेखा–जोखा दर्ज है, जो हमारी आँखों के सामने हौलनॉक दृश्य रचता है। ये दृश्य जीवन की वास्तविकताओं के इतने करीब है कि मन को काल्पनिकता के भाव छू ही नहीं पाते। रमेश शर्मा का उद्देश्य खाली कहानी लिखना भर नहीं है, वे समय के बदलते परिवेश में जन्मी समस्याओं को रेखांकित पर उसके समाधान की दिशा में एक चेतना का संचार करते हुए भी नजर आते हैं। उनके इस उद्यम से कहानियों की लयात्मकता या गति पर कोई फर्क नहीं पड़ता। उनकी कहानियाँ हमें आनेवाले बेहतर समय के लिए आश्वस्त करती है। इस संग्रह की कहानियों के माध्यम से वे एक ऐसी अन्वेषी कथाकार के रूप में अपनी पहचान बनाने में कामयाब हुए हैं, जिनको आम लोगों के दु:खदर्द और समस्याओं की चिंता हमेशा बनी रहती है। उनकी कहानियों के पात्रों की भीतरी दुनिया में मानवीय दुर्बलताएँ, दु:ख दर्द, नैतिकता, डर, अधूरे प्रेम की कश्मकश एवं कर्तव्यबोध जैसे सभी मानवीय घटना विद्यमान है।

कुल मिलाकर उनकी कहानियाँ वर्तमान समय और समाज की त्रासदी से उपजी कभी न खत्म होनेवाली पीड़ा के दस्तावेज है। चरित्र–चित्रण के नजरिये से उनकी कहानियाँ स्वाभाविक, चित्रात्मक बन पड़ी है। संवाद की दृष्टि से देखें तो संग्रह की कहानियों में संवाद योजना पात्रानुकूल, संक्षिप्त एवं कथा को आगे बढ़ाने में सहायक है। दिलचस्प संवादों के कारण कहानियाँ मारक बन गयी हैं। यहाँ पर एक उदाहरण देखिए–''टी.वी. मत देखा करो सर! टी.वी में बुनियादी मुद्दों से भटकनेवाली बातें प्लांट होकर अधिक आ रही है। टीवी खोलो कि वही लव जेहाद, हिन्दू– मुस्लिम, फलाना–ढिकाना। (कहानी :वह उस्मान को जानता है)

''ये सरकार भी कितनी गंदी है, छी:! इस पंक्ति को एक ग्यारह साल की बच्ची ने अपने नोटबुक में गणित, भाषा और विज्ञान की जगह चस्पा कर दिया था।'' (कहानी :रिजवान तुम अपना नोटबुक कब लेने आओगे)

''नींद के साथ–साथ देह को तो और भी चीजों की जरूरत पड़ती है। मसलन नींद, भोजन...और भी बहुत कुछ! सारी चीजें एक साथ गुथीं हुई

नहीं लगती तुम्हें।'' (कहानी : तोहफे में मिली थोड़ी सी नींद)

''अब तो दो करोड़, तीन करोड़, पाँच करोड़...इनसे ही परिभाषित होने लगे हमारे घर! कितना कुछ बदल गया इन बीस सालों में। प्रेम और रिश्तों की खुशबू न जाने कहाँ उड़ गए। हम मिले भी तो घर की एक नयी परिभाषा के साथ। कहते–कहते सिरी की आँखें एकाएक नम हो उठीं। (कहानी : घर)

रमेश शर्मा की कहानियाँ आज की कहानियाँ हैं, इसलिए उनकी भाषा में आधुनिक शब्द–विन्यास वातावरण को जीवन्त कर देते हैं। कहानियों की भाषा प्रांजल, सरल, भावानुकूल है, किन्तु अव्यावहारिक है कि संग्रह में अंग्रेजी एवं तकनीकी शब्दों की प्रचुरता से प्रयोग किया गया है। कहानी भाषाशिल्प की दृष्टि से देखें तो उनकी भाषाशैली समर्थ, रोचक और सम्प्रेषण कला से युक्त है।

संग्रह की पहली कहानी 'वह उस्मान को जानता है' एक मनुष्य के अपनी ही दुनिया के भीतर सिमटकर रह जाने की कथा है–''राघव आज के औसत आदमी का प्रतिनिधित्व करता है। वह कम्पनी के लिए मुनाफे का मशीन है, जिसे हमेशा अपनी नौकरी चले जाने का डर सताता रहता है। छुट्टी का दिन है, बच्चे बाहर घूमने की जिद्द कर रहे हैं, तभी दरवाजे में किसी 93 नम्बर वाली पड़ोस की मेहजबीन की दस्तक होती है। राघव और उसकी पत्नी दोनों हैरान और परेशान हो जाते हैं। गुलाब के पौधे को देखकर उसे याद आने लगता है कि ऑफिस के गनीराम ने गीली मिट्टी और प्लास्टिक की पन्नी में गुलाब का एक पौधा उसे दिया था और राघव ने अपने बच्चे के जन्मदिन पर उसे गमले में रोपा था। राघव को आज अचानक उस गुलाब को देखकर गनीराम और उसकी बेटी को याद हो आती है, कैसे उसकी बेटी के साथ तेज बारिश में रास्ते में गैंगरेप हुआ था, कैसे गनीरमा की बर्बरतापूर्ण हत्या कर दी गई थी। उस्मान एक ऐसा पात्र है, जो पत्रकारिता के पेशे को पूरी ईमानदारी के साथ करता है और एक मनुष्यता की मिसाल पेश करता है। उस्मान की रिपोर्टिंग और सक्रियता की वजह से दोषियों को सजा मिलती है। गुलाब के उन जिंदा फूलों ने राघव के भीतर मर चुकी कई–कई चीजों को आज फिर से जिंदा कर दिया था। क्या कभी उसने सोचा कि गनीराम और उसकी बेटी के मर जाने के बाद गनीराम की अकेली पत्नी का क्या हुआ? कभी उससे मिलकर उसकी सुध लेने की कोशिश की? जो गनीराम राघव के घर–परिवार की खैर खबर उससे नित्य पूछ लेता था, क्या उसके भलमनसाहत का कभी ख्याल आया। उस्मान से भी तो वह दोबारा मुलाकात नहीं कर सका।

वह छत पर से दूर–दूर तक नजर फेरता है, उसे जले हुए घर दिखाई देते हैं। उसमें से एक घर उस्मान का भी है, जिसे वह जानता पहचानता है। थोड़ी दूर बाद वह फिर स्वार्थी होने लगता है, सोचने लगता है अपनी छुट्टी का दिन भला कौन बर्बाद करे। वह तेजी से छत की सीढ़ियाँ उतरने लगता है। पड़ोस की महजबीन जा चुकी थी। कहानी का अंत और चरमोत्कर्ष कहानी के केन्द्रीय पात्र के द्वारा अपने मनुष्य होने पर उस समय ज्यादा शर्म महसूस करने लगता है, जब पत्नी के द्वारा हिन्दू–मुस्लिम दंगे में उस्मान की मौत की खबर सुनता है।

दूसरी कहानी 'रिजवान तुम अपना नोटबुक लेने कब आओगे?' कोरोना त्रासदी से उपजी घटनाओं का मार्मिक चित्रण है। इसमें पलायन करते मजदूरों की छोटी बच्ची सुम्मी के जीवन के माध्यम से मार्मिक चित्रण है। कोरोना काल में सरकार की नाकामयाबी, पलायन करते मजदूर, कोरोना से माँ की मौत, क्वारेंटाइन सेंटर में साँप के काटने से पिता की मौत के बाद, अनाथ हुई 11 वर्षीया सुम्मी के द्वारा झोपड़ीनुमा गुमटी में बर्तन माँजने जैसी घटना और उसकी डायरी लिखी बातें हमें अंदर से झकझोर कर रख देती है। सुम्मी की डायरी के माध्यम से यह दारुण कथा कई सवाल छोड़ जाती है।

तीसरी कहानी 'तोहफे में मिली थोड़ी सी नींद' स्त्री–पुरुष संबंधों की जटिलताओं पर केन्द्रित है। देह को नींद की जरूरत होती है और नींद को देह की। लेकिन नींद तो मन से आती है। दिमाग नींद को पास आने नहीं देता। कहानी में स्त्री की अतृप्त इच्छाओं की पड़ताल की गई है। मिसेस नौटियाल गाँव से शादी होकर रायपुर शहर आती है, सच्चे प्रेम और सहानुभूति के अभाव में वह अंदर ही अंदर अपने भीतर कहीं गुम होने लगती है। पति पर स्त्री का आदी है, वह अक्सर देर रात घर वापस आता है, मिसेस नौटियाल अपने को नितांत अकेली महसूस करती है, उसकी देह की भूख की व्याकुलता उसे रात–रातभर सोने नहीं देती। वह आधी रात को घर से निकलकर पास ही के मैदान के एक कोने में अकेली बैठी रहती है। उसके अपार्टमेंट के वॉचमैन और मैदान पर स्थित शैक्षिक अनुसंधान परिषद् के वॉचमेन उसे टकटकी लगाए देखते रहते हैं। एक रात बारिश से बचने के लिए मिसेज नौटियाल अनुसंधान परिषद् के मेन गेट की ओर दौड़ पड़ती है, उसे देखकर न चाहते हुए भी वहाँ का वॉचमेन गेट का दरवाजा खोल देता है और अपने छः बाई छः की खोली में मिसेस नौटियाल को बैठने के लिए अपनी प्लास्टिक की कुर्सी देकर स्वयं वहीं जमीन पर उकडू बैठ जाता है।

वॉचमेन परिवारवाला है, परिवार से दूर रहकर भी वह परिवार के प्रति अपनी जवाबदेही को अच्छी तरह समझता है। बातों–बातों में मिसेस नौटियाल की दिलचस्पी वॉचमेन की ओर बढ़ने लगती है। मिसेस नौटियाल को वॉचमेन की बातों में प्रेम की अनुभूति होती है। इस मीठी–सी, चाहे–अनचाहे संवाद के बाद वॉचमेन की उस नजर के भार को मिसेस नौटियाल अपने मन और अपनी देह पर अपने बचे हुए दिनों में हमेशा महसूस करती रही। पता नहीं उस नजर में ऐसा क्या था कि उसने मिसेस नौटियाल को उनके जीवन के बाकी बचे हुए दिनों के लिए थोड़ी सी नींद तोहफे में दे दी थी। इस कहानी की सम्प्रेषणीयता जबर्दस्त है।

कहानी 'जो फिर नहीं लौटते' एक आत्मकेन्द्रित, स्वार्थी एवं कर्तव्य विमुख पति/पिता की कहानी है, जो अपनी पत्नी का तो परित्याग कर ही चुका है, साथ ही साथ अदालती आदेश के बावजूद वह अपनी बेटी से भी किसी तरह पिंड छुड़ाना चाहता है और वह इसमें कामयाब भी हो जाता है। आज के समय में रिश्तों के बीच जन्मी संवेदनहीनता का चरम उत्कर्ष इस कहानी में दिखाई पड़ता है, जो सोचने को विवश करता है।

'अधूरी बातचीत' कहानी अत्यन्त संवेदनशील होने के कारण पाठकों के अंतःस्थल में अपनी अमिट छाप छोड़ती है। इसमें कोविड वार्ड में एक डॉक्टर के अंदर परिवार से सदा के लिए दूर होने का डर तो है ही, इसमें दो पात्र ऐसे भी हैं, जिनकी मृत्यु कोविड से हो जाती है। हॉस्पिटल के कमरे में रखी दो लाशें आपस में बात कर रही हैं।

लाश नं. एक (पुरुष) कहने लगता है– ''मैं जीवन के हर क्षेत्र में पिछड़ जाता था, पर मरने में समय से पहले ही मेरा नंबर आ गया।'' उसे इस बात का अफसोस है कि वह जरूरी काम समय पर नहीं कर सका और कल पर टालता रहा। लाश नं. दो (पुरुष) को चिंता है कि उसके नहीं होने पर डिलीवरी के समय उसकी पत्नी को डॉक्टर के पास कौन ले जाएगा? वह बच्चा भी कितना अभागा है बेचारा! बाप का चेहना भी नहीं देख पाया। बच्चे को लेकर देखे गये उन सपनों का क्या होगा?

'घर' शीर्षक अक्षत और सिरी की अधूरी प्रेम कहानी है। दोनों बीस साल बाद अचानक राजस्थान के जयपुर के मानसरोवर के पॉश एरिया में मिलते हैं। दोनों के पास महँगी–महँगी कारें हैं।

अक्षत के द्वारा घर के बारे में पूछे जाने पर सिरी भावुक हो जाती है। वह अक्षत को बताती है कि उसके पास भी अक्षत की तरह कई शहरों में अलग–अलग महँगे मकान तो हैं, लेकिन उसके बावजूद नाखुश है और अपने को नितांत अकेली महसूस करती है। वह अक्षत से यह भी कहने से नहीं चूकती–''याद है अक्षत! हम दोनों ने मिलकर एक सपना देखा था, कभी उस सपने में ईंट–गारों की जगह प्रेम और रिश्तों की खुशबू से उस घर की दीवारें खड़ी होनी थी, कितना सुंदर सपना था वह। लबालब प्रेम से भरा हुआ। अक्षर

उदास होकर सिरी से कहता है, सिरी अमीरी में जीवन बिताना तुम्हारा सपना रहा और यही हमारे अलग होने का कारण बना। मैं भी तुम्हें ठीक से विश्वास नहीं दिला सका कि आगे चलकर मैं तुम्हें वह जीवन दे सकता हूँ, मेरी हिम्मत नहीं हुई। उस वक्त मुझे लगता था कि अमीर बनना दुनिया का कितना कठिन काम है। सचमुच आज लगता है घर की वह परिभाषा कहीं गुम हो गयी है, सब कुछ सपना बनकर रह गया है। दोनों अंत में भावुक हो जाते हैं। लेकिन नैतिकता और कर्तव्यबोध उन्हें एक बार फिर एक नहीं होने देता। इन कहानियों का रसास्वादन आप इन कहानियों को आद्योपांत पढ़कर ही कर सकते हैं।

'खाली जगह' इस संग्रह की सबसे उत्कृष्ट कहानी है, शिल्प और भाषा दोनों ही दृष्टि से श्रेष्ठतम। कहानी में गरीब पिता रामेश्वर की बेटी फूलमती...का समय और पैसे के अभाव के कारण उचित इलाज नहीं हो पाता और उसकी मौत हो जाती है। कहानी इतनी मार्मिक बन पड़ी है कि पाठकगण अपने आँसू नहीं रोक पाते। भाषायी सौंदर्य और शब्दचित्र के कारण गद्य का लालित्य कहानी को अप्रतिम और संग्रहणीय बना देता है। इस कहानी में इमरजेंसी फीस के रूप में अधिक रकम लेकर पेसेंट को देखने की जो नयी परम्परा विकसित हुई है, उसका जिक्र है। इस परम्परा का शिकार गरीब लोग होते हैं, जिसके पार इमरजेंसी फीस देने के लिए पैसे नहीं होते और उनका समय पर इलाज नहीं हो पाता।

'राजा की बारात' कहानी एक ही भावभूमि पर दो अलग–अलग कहानियों को साथ जोड़कर लिखी गयी है। एक कहानी पिता की है, जो पुलिस विभाग में होने के बावजूद स्वभाव से मुलायम और इंसानियत पर विश्वास रखता है। लेकिन उसे अपनी इंसानियत की भारी कीमत भी चुकानी पड़ती है। दूसरी कहानी बेटी की है, जो अपने जाँघों की हड्डियों के दर्द से पीड़ित है, जिसे अपने इलाज से ज्यादा अपने बचपन के घनिष्ठ दोस्त से मिलने की बेताबी है, लेकिन इन सबके बीच राजा की बारात है। यह कहानी 'राजा की बारात' से उपजी समस्याओं से हमें रूबरू कराती है। बैनर, पोस्टर, टेंट लगाने के चक्कर में कई दिनों तक शहर की बिजली चली जाती है, शहर के सड़कों पर आने–जाने में बंदिशें लगाई जाती हैं। भले ही कोई जरूरतमंद व्यक्ति गन्तव्य तक समय पर न पहुँच पाये या फिर कोई मरीज अस्पताल तक पहुँचने से पहले दम तोड़ दे, परीक्षार्थी परीक्षा से वंचित रह जाएँ, इससे राजा (मुख्यमंत्रीजी) को कोई फर्क नहीं पड़ता। एस.पी. और डी.एम. का सख्त निर्देश रहता है कि मुख्यमंत्री का काफिला गुजरे तो एक परिंदा भी सड़क के ऊपर से न गुजरे। लेकिन एक जरूरतमंद बीमार बूढ़े को अस्पताल तक जाने देने की दया भाव की कीमत पुलिस पिता को अपनी नौकरी की बर्खास्तगी से चुकानी पड़ती है। उसी तरह उसकी लड़की जो डॉ. निशान्त को मन ही मन पसंद भी करती है, जिससे बहुत दिनों के बाद इलाज के बहाने वह मिलना भी चाहती है, पर उसके मिलने की तमन्ना एवं इलाज की जरूरत भी मुख्यमंत्री के काफिले और जिंदाबाद के नारों में दम तोड़ देती है।

'रुतबे की दीवार' कहानी अफसरशाही के ऊपर करारा तंज है। कैसे कोई व्यक्ति अफसर बन जाने के बाद अपने आसपास रुतबे की दीवार खड़ा करता है, अपने अधीनस्थ महिला कर्मचारियों पर बुरी नजर रखता है, रिश्वतखोरी को अपना धर्म समझता है। वहीं रिटायर्ड होने के वक्त अपने खड़े किये गये रुतवे की दीवार के ढह जाने से अपने को नितांत अकेला, उपेक्षित, छोटा और हताशा के भाव से भर जाता है, उद्देश्य की दृष्टि से कहानी पूर्ण रूप से सफल है।

रमेश शर्मा की कहानियों से गुजरते हुए हमें महसूस होता है कि हम अपने ही किन्हीं पुराने अनुभवों से गुजर रहे हैं। संग्रह की सभी कहानियों का उद्देश्य एक ही है...मनुष्यता को हरहाल में बचाए रखना। इस तरह संग्रह की कहानियाँ एक दूसरे से गुंथी हुई अपने गन्तव्य की ओर आगे बढ़ती हैं।

कहानी संग्रह : उस घर की आँखों से, लेखक–रमेश शर्मा, प्रकाशक न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन, सी–515 बुद्धनगर, इन्द्रपुरी, नई दिल्ली

ग़ज़लें /

विज्ञानव्रत,
एन 138, सेक्टर 25, नोएडा–201301
मो.–9810222224571

1.

ख़ामोशी मेरी ज़बाँ है
वो मगर सुनता कहाँ है

सामने हैं आप लेकिन
आप तक रास्ता कहाँ है

जानता हूँ दुश्मनों को
फिर मुझे ख़तरा कहाँ है

छोड़िए भी मुस्कुराना
दर्द चेहरे से अयाँ है

ढूँढ़ना क्या है तुझे अब
मैं जहाँ हूँ तू वहाँ है

2.

और सुनाओ कैसे हो तुम
अबतक पहले जैसे हो तुम

अच्छा अब ये तो बतलाओ
कैसे अपने जैसे हो तुम

यार सुनो घबराते क्यूँ हो
क्या कुछ ऐसे–वैसे हो तुम

क्या अब अपने साथ नहीं हो
तो फिर जैसे–तैसे हो तुम

ऐशपरस्ती?तुमसे?तौबा!!!
मज़दूरी के पैसे हो तुम।

3.

मुझ पर कर दो जादू–टोना
एक नज़र ऐसे देखो ना

इतने दिन में घर आये हो
घर जैसे कुछ देर रहो ना

बादल हो तुम या ख़ुशबू हो
बरसो खुलकर या बिखरो ना

ढूँढ़ न पाया खुद को घर में
छान चुका हूँ कोना–कोना

तुमसे खुद को वापस क्या लूँ
रक्खो अब तुम ही रख लो ना।

4.

जिस्म जिसका है बयाँ मुझमें
कौन है ये बेज़बाँ मुझमें

जो रहा होकर कभी मेरा
वो मिलेगा अब कहाँ मुझमें

था सितारों से कभी रौशन
क्या हुआ वो आसमाँ मुझमें

जो बनाया था कभी तूने
अब नहीं वो आशियाँ मुझमें

डूबने का शौक़ था तुमको
लो हुआ दरिया रवाँ मुझमें।

5.

मुझको अपने पास बुलाकर
तू भी अपने साथ रहा कर

अपनी ही तस्वीर बना कर
देख न पाया आँख उठाकर

वे उन्वान रहेंगी वर्ना
तहरीरों पर नाम लिखा कर

सिर्फ़ ढलूँगा औज़ारों में
देखो तो मुझको पिघलाकर

सूरज बनकर देख लिया ना
अब सूरज–सा रोज़ जलाकर।

समीक्षा :

क्रूर समय की समीक्षा करती कहानियाँ

सूर्यकान्त नागर,
वैराठी कॉलोनी, इन्दौर (म.प्र)
मो.–9893810050

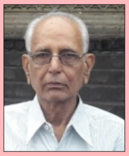

पिछले कुछ दशकों में जिन कथाशिल्पियों ने कहानी के परिदृश्य को बदलने का काम किया और जिन्होंने पाठकों के बीच पहचान बनाई, उनमें पंकज सुबीर एक प्रमुख नाम है। अपने विशिष्ट रचना–विधान से उन्होंने अच्छा पाठक–वर्ग तैयार किया है। अबतक प्रकाशित सात कहानी संग्रहों के क्रम में 'हमेशा देर कर देता हूँ मैं' उनका ताजा संग्रह है। इसमें उनकी दस लंबी कहानियाँ संगृहीत हैं। कथा–कहन की उनकी अपनी शैली है। आकार में विशालता पा गई कहानियों में मुख्य घटना के साथ वे मनुष्य–जीवन से जुड़े अन्य महत्त्वपूर्ण मुद्दों के लिए भी युक्ति निकाल लेते हैं। कथाकार अपने अंदर एक बड़ी दुनिया समेटे हैं। सृजन की दुनिया कहानीकार के निज के एकांत को तथा बाहर के शोर को एक कर देती है। ऐसे प्रसंग कथा–प्रवाह में बाधा पैदा कर जोड़ की तरह दिखाई नहीं देते। वे कथा के सहज अंग बन जाते हैं। वस्तुतः पंकज प्रयोगवादी कथाकार है, पर प्रयोगों का इस्तेमाल सजावट के लिए नहीं करते। वे जीवन के जटिल यथार्थ को सुलझे शिल्प में प्रस्तुत करते हैं। उनकी कहानियाँ इस बात का संकेत है कि रचनात्मक विधाएँ पैमाने में नहीं बँधती। किन दुर्लभ मार्गों से होकर पंकज की कहानी मुकाम तक पहुँचेगी, इसका अनुमान लगा पाना कठिन है। लेकिन यह सब पाठक को चौंकाने या चमत्कृत करने के लिए नहीं किया जाता। यह एक विस्फोट की भाँति होता है, जो पाठक को हिलाकर रख देता है। लगता है, कहानी का अंत ही उसकी शुरुआत है। संग्रह की फैंटेसीनुमा कहानियाँ रचनात्मक कल्पना के माध्यम से असत्य को भी सत्य की तरह प्रस्तुत करती हैं। उल्लेखनीय है कि फैंटेसी भी सृजन का ही एक रूप है। उदय प्रकाश, असगर वज़ाहत और शशांक की कई कहानियाँ फैंटेसी लेखन की उत्कृष्ट मिशाल है।

किसी विचाराधारा विशेष से आबद्ध न होने के बावजूद पंकज की प्रतिबद्धता संदेह से परे है। उन्हें पता है कि जीवन के संघर्ष में उन्हें किसके साथ खड़ा रहना है। तलहटी में खड़ा आदमी उनकी रचनात्मकता के केन्द्र में है। वे कहानियों में क्रूर समय की प्रतीक्षा करते हैं। व्यवस्थागत विसंगतियों पर उनकी कड़ी नजर है। परिवर्तन की छटपटाहट उनके कृतित्व में देखी जा सकती है।

शायर मुनीर नियाज़ी की नज़्म के बोल 'हमेशा देर कर देता हूँ मैं' के आशयों को आधार बना लेखक ने संग्रह की प्रथम कहानी की रचना की है। वस्तुतः कहानी असमंजस, नैतिकता– अनैतिकता, सही–गलत के बीच निर्णय–अनिर्णय की दास्तान है। युवा नायक लंबी चाची से देह–संबंध स्थापित करने से मना कर देता है, एक अनैतिक काम मान कर। लेकिन नपुंसक पति से उपजे अभाव के कारण चाची का धैर्य और संयम जवाब दे देता है और वह युवक को बाहों में जकड़ लेना चाहती है। पहाड़ी नदी को वश में करना मुश्किल होता है। जब बाढ़ आती है तो वह किनारों को तोड़ अपने अंदर बहुत कुछ समा लेना चाहती है। लकिन जब चाची अपनी प्यास बुझाने में असफल होती है तो बहुत शर्मिंदगी महसूस करती है। एक ओर युवक के समक्ष निर्वस्त्र होने की शर्मिन्दगी, दूसरी ओर समाज के समक्ष। यहाँ कथा में चाची और युवक के अंतर्द्वन्द्वका सजीव चित्रण हुआ है। लेकिन युवक को जब एहसास कराया जाता है कि प्यासे को पानी पिलाने से बड़ा कोई पुण्य नहीं। अतृप्त देह की इच्छा–पूर्ति न कर उसने भूल की है। पिंड छुड़ा, भागकर चाची के मन को आहत किया है। उसे स्त्री की लाचारगी को समझना चाहिए था। यौनिक आकर्षक एक सहज प्रक्रिया है। इच्छा को दबाने की जितनी कोशिश की जाती है, वह उतने ही वेग से प्रतिरोध करती है।...पंकज के कहानी के आरंभ में बड़ी सूझबूझ से एक और सत्यान्वेषण किया है। युवा पीढ़ी किस तरह बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए बंधुआ हम्मालों की तरह दिन–रात पिसते रहते हैं, कहानी में इसका यथार्थपरक चित्रण हुआ है। इन युवकों के दिन का चैन और रातों की नींद उड़ी रहती है। मोबाईल, लेपटॉप में उलझे वे परिवार से कटे रहते हैं। कंपनियाँ श्रम को सेवा का नाम दे भरपूर शोषण करती है।

'बेताल का जीवन एकाकी' उन बुजुर्गों की व्यथा–कथा है, जिनकी संतानें कैरियर और बड़े पैकेज के लोभ में विदेश जा बसते हैं और वृद्धजन स्वदेश में एकाकी जीवन जीने को अभिसक्त हो जाते हैं। बच्चों के प्यार एवं सान्निध्य के लिए तरसते रह जाते हैं। जबकि युवा पीढ़ी को लगता है कि वे स्वदेश में रह जायेंगे तो सड़ जायेंगे। जिस मनोदशा से वृद्धजन गुजरते हैं, उसका अनुमान युवाओं को नहीं होता। धनंजय को क्रिस्टोफर किट वाकर और बेताल के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत करती यह एक उत्तम फैंटेसी है।

'मर नासपीटी' सकारात्मक सोच की संवेदनात्मक कहानी है। सकारात्मकता से कुछ बेहतर करने की प्रेरणा मिलती है। मन आशा, उमंग से भर आता है। फुफेरी–ममेरी बहनों में कटुता और मनमुटाव का कारण यह है कि एक ही शादी जिसके साथ होनेवाली थी, उसे दूसरी ले उड़ी। तभी से दोनों के बची ठनी हुई है। यह दुश्मनी अंततः कैसे एक स्त्री और माँ की संवेदना बनती है, इसका अत्यन्त प्रतीकात्मक, प्रेरणास्पद और सटीक अंत लेखक ने प्रस्तुत किया है। नासपीटी कहने में भी बहन हलीमा की सहानुभूति और साक्षी चिंता का भाव निहित है। उल्लेखनीय है कि 'नासपीटी' मालवी शब्द है, जिसका अर्थ है–जा तेरा सर्वनाश हो, तू समूल नष्ट हो। 'खोद–खोद मरे ऊंदरा, बैठे श्रान भुजंग' कहानी उस महाजनी सभ्यता का रूपांतरण है, जिसका जिक्र प्रेमचंद ने किया था। बिल खोदता है ऊंदरा (चूहा) और उसपर आधिपत्य जमा लेता है सर्प। मिलीभगत द्वारा दूसरों के श्रम और अर्जन पर विलासिता का महल खड़ा करने का जो प्रपंच आजकल चल रहा है, उसकी प्रभावी तस्वीर कहानी में पेश है कि कैसे हितग्राही योजनाओं के नाम पर कृषकों को भ्रमित किया जा रहा है। पटवारी, महाजन, बैंक और प्रशासन सब इस गोरखधंधे में शामिल है। पोषक ही शोषक बने हुए हैं।

'मूंडवेवाले' झूठी शान, स्वार्थ, प्रदर्शनकारी भाव और दूरदर्शिता की कहानी है, जिसमें बेटा झूठी शान–शौकत के चक्कर में पिता की मृत्यु की खबर छिपाकर जश्न मनाता है। भय है कि समारोह के मध्य अशुभ समाचार फैल गया तो सारे किये कराये पर पानी फिर जाएगा। जलसे की शोभा तो बाधित होगी ही, उसका निहितार्थ भी तिरोहित हो जाएगा। कल्पना कीजिए उस स्थिति का जब घर में लाश पड़ी है, तो बाहर लोग ठुमके लगा रहे हैं।

'कैद पानी' प्रतिरोध की कहानी है। प्रतिरोध के लिए जज़्बा और हिम्मत जरूरी है?परिस्थितियाँ जितनी प्रतिकूल होती हैं, प्रतिरोध के स्वर उतने ही तीव्र होते हैं। प्रतिरोध न होने पर गलत ताकतें सिर उठाती हैं। कैसी विडम्बना कि प्रकृति जिस पानी पर सबका अधिकार है, उसपर चंद बलशाली अधिकार जमा लेते हैं, चाहे समस्या गाँव के जलाशय के पानी की हो या बोतल बंद पानी की। आज पानी को बोतल में कैदकर कमाई की जा रही है। पूंजी जल की राह की अवरोधक बन गई है।

'चर्च–ए–गुम' उस प्रवृत्ति पर प्रहार है, जहाँ सम्पन्न लोग तंत्र की

मिलीभगत से सरकारी या अन्यभूमि पर अवैध कब्जा जमा अपना साम्राज्य फैलाते हैं। भ्रमित करने के लिए हड़पी ज़मीन पर मंदिर बना जनता की धार्मिक आस्था को भुनाते हैं। लेखकीय दृष्टि और अभिव्यक्ति कुशलता देखना हो तो यह उक्ति देखिए, जहाँ व्यासायियों को दी जानेवाली सीख के बारे में कथाकार कहता है–'मीठा जितना करना हो, वह मिठाई को ही करना, अपने आपको नहीं। हलवाई अगर अपना स्वभाव बदल स्वयं को मीठा कर लेगा तो उसके घर के बच्चे भूखे मरेंगे।' रचना साम्प्रदायिक राजनीति को व्यक्त करती समकाल की विचारपरक कहानी है। संग्रह की अंतिम कहानी 'इलोई! इलोई! लामा सबाख्तानी' विद्रोह करती उस स्त्री की कहानी है, जो करीब से रिश्तेदारों की बर्बरता के चलते उनसे मुँह फेर लेती है। वह जीवनभर उन्हें माफ नहीं करती। हाँ, उसे इस बात का रंज अवश्य है कि समय पर मुँह खोलती, तो परिणाम भिन्न होता। उसकी एक चुप्पी ने अनेक अपराधों को जन्म दिया। 'पत्थर की हौदें और अगन फूल' संग्रह की अन्य उल्लेखनीय कहानी है।

पंकज की कहानियाँ व्यापक सामाजिक सरोकारों की कहानियाँ हैं। उनकी विचारधारा को उनकी रचनाओं में रेखांकित किया जा सकता है। पिछले दिनों जिन कहानीकारों ने कहानी के परिदृश्य को बदलने का काम किया है, उनमें पंकज सुबीर एक महत्वपूर्ण नाम है। उनकी भाषा में ताजगी और सृजनशीलता है। इसमें उनकी शाब्दिक ऊर्जा बहुत सहायक है। देशज शब्दों से युक्त लोकव्यापी भाषा कहानीकार की बड़ी ताकत है। कहानियों में आंचलिक बोली के शब्द–प्रयोग से परिवेश जीवंत हो उठा है। निस्सड़ला, ऊंदड़ा, एबला, सपड़, लबूरना, टोर्याहोन आदि शब्दों से रू–ब–रू हो उन पाठकों की आनंदानुभूति द्विगुणित हो जाती है, जो इन शब्दों से वाकिफ है। प्रयोगवादी एवं बौद्धिक होते हुए भी कहानियाँ अतिकलावादी नहीं हैं। उनमें कलात्मक संयम देखने को मिलता है। वहाँ भाषा की पच्चीकारी नहीं है। पंकज बाहरी सौंदर्य के लिए कथ्य की बलि नहीं चढ़ाते। उनकी अपनी विशिष्ट शैली है। उनकी सूक्ष्म दृष्टि हर पात्र पर अंकित है। उनका अभिप्रेत मानवीय कल्याण का है, जो हर खरे साहित्यकार का होता है। संग्रह की कहानियों से गुजरना निःसंदेह एक भिन्न किस्म का अनुभव है। (लेखक पंकज सुबीर, प्रकाशक–राजपाल, दिल्ली–6)

कविता /

शैलेन्द्र शरण
आनंदनगर, खण्डवा (म.प्र.)
मो. : 8989423676

दावानल

जहाँ से शुरू होती है
वहाँ नहीं लौटती
अस्तित्व को राख करती
ऐसे ही नहीं फैलती आग
आग को चाहिए और आग
आसमान से गिरे या
भीतर भीतर सुलगे

स्निग्ध शब्दों से बचे तो रुके
सान्त्वना की फुहार मिले तो थमे
आँसुओं की बारिश हो तो बुझे
हथेलियों की गर्मी से शांत होनेवाली
आक्रोश में दबी एक गुहार है आग

ये जो फैली पड़ी है दुनिया भर में
स्वार्थों की बिजली गिरने से लगी है
ये जो धधकी पड़ी है सीनों में
उतनी ही अर्थवान है
जितना अर्थ का भाष्य
जितना जमीन में बहता हुआ तेल
रगों में बहता हुआ खून
जितना लोहे और जस्ते में बंद विध्वंस

सिरफिरे कहाँ नहीं होते
इसका अर्थ नहीं कि
कोई भूल जाये दया का अर्थ
धमकियों के पीछे की ताकत
नितांत बुजदिली है

ओ शासक!
निरंतरता की चाहत में दुर्भाव...
कितने दिन तुम्हें शासक रहने देंगे
जल्द ही दिखाई देगा
सपनों में तुम्हें गुलाम नजर आनेवाले
जिंदा लोगों का हुजूम तुम्हें
सड़कों पर मुट्ठी बाँधे
जिन्हें तुम मूर्छित मान
लंबी उम्र की कामना कर रहे हो
छीन लेंगे तुमसे तुम्हारी उम्र

ये जो दावानल है
विश्वयुद्ध से कुछ ही दूर
इससे हादसा समझने की भूल मत करना
हरे जंगलों का हरहराकर जलना
आदमियों और जंतुओं का मरना

बस्तियों का भय से खाली हो जाना
बदहवास इंसानों का दम घुट जाना
कहीं मरकर दफन हो चुकी
संवेदनाओं को पुनर्जीवित करना तो नहीं?

नहीं नहीं...
फिर यह कैसा प्रकोप?
धूर्तों!
ये उन सूख चुकी आँतों की मरोड़ है
ठंढी हो चुकी हथेलियों की ऊष्मा है
ये अनसुनी गुहार की फुफकार है
ये उस लाठी की आवाज़ है
जो कभी गाँधी के हाथों में रही
तुम्हें खदेड़ रही है मुकम्मल होने लिये
शासकों! मानवता के लिए
त्याग दो अपना स्वार्थ अपना अहंकार।

समीक्षा /

दुष्यन्त की परंपरा को छूती ग़ज़लें

राजेन्द्र वर्मा
3/29 विकास नगर
लखनऊ
8009660096

अखिलेश श्रीवास्तव चमन हिन्दी कथा जगत के सुपरिचित हस्ताक्षर हैं। लेकिन कहानियों के साथ–साथ उनकी कविताएँ और ग़ज़लें भी यदा–कदा हिन्दी के पाठकों के सामने से गुजरती रहती हैं। एक सिद्ध रचनाकार की भाँति वे ग़ज़लों में भी अपनी सिद्धहस्तता प्रकट करते हैं, जिसकी गवाही उनके अशआर करते हैं। चमन की अधिकांश ग़ज़लें दुष्यंत की परंपरा को छूती दिखती हैं। आज कवि–कर्म भावुकता भरे कथ्य के प्रसारण का नहीं, वरन गहन संवेदना के साथ संतुलित वैचारिकी को प्रस्तुत करने का है। आज हम जिस समय में रह रहे हैं, वह निश्चित ही सवार्थ, संकीर्णताओं और साम्प्रदायिकता से आक्रांत है। सांस्कृतिक और मानवीय मूल्यों का क्षरण निरंतर जारी है। ऐसे में कोई सजग रचनाकार अपने समय की चुनौतियों से कैसे आँख चुरा सकता है। चमन ने इन चुनौतियों को बखूबी पहचाना है। अपने संग्रह 'रोशनी के वास्ते' में चमन ऐसी ही ग़ज़लें हमारे सामने लेकर आते हैं, जो समय की चुनौतियों को न केवल स्वीकार करती हैं, बल्कि वैचारिकी के स्तर पर उनका प्रतिरोध भी रचती हैं।

प्रस्तुत संग्रह में कुल बेरासी ग़ज़लें हैं, जो अनेक वर्णिक और मात्रिक छन्दों में हैं। इन छन्दों में उर्दू की पारम्परिक बहरें भी शामिल हैं। ग़ज़लकार ने कहन के मुकाबले कथ्य को वरीयता दी है। इससे कहीं–कहीं ग़ज़लों की लय खुरदरी हो गयी है, पर कथ्य की प्रबलता पाठकीय परिश्रम को व्यर्थ नहीं जाने देती। उर्दू छन्दशास्त्री मात्रिक छन्द में ग़ज़ल होना स्वीकार नहीं करते, तथापि किसी के न मानने से कोई रचना जो ग़ज़ल के विधान में है, विधा से पृथक् नहीं हो जाती, भले ही उसे हिन्दी ग़ज़ल कहा जाए। मेरी दृष्टि में चमन की अधिकांश ग़ज़लें हिन्दी ग़ज़ल की श्रेणी में आती हैं। भाषा की दृष्टि से चमन की ग़ज़लों में पर्याप्त विविधता है। इनमें हिन्दी की तत्सम सहित बोलियों का भी अवसाद लिया जा सकता है। उर्दू के बोलचाल के उन शब्दों को भी इनमें शामिल किया गया है, जो हिन्दी में घुलमिल गए हैं और अभिव्यक्ति में अपेक्षित लोच देते हैं। लय कविता का प्राथमिक गुण है और ग़ज़ल में तो लय का विशेष स्थान है, जो छन्द विशेष से आसानी से उत्पन्न होती है। यहाँ छन्दों पर चर्चा असंगत होगी, तथापि यह उल्लेखनीय है कि चमन ने वर्णिक और मात्रिक दोनों प्रकार के छन्दों में लय का विशेष ध्यान रखा गया है। ग़ज़लें बहर की हों अथवा बड़ी बहर की, लयात्मकता सर्वत्र विद्यमान है।

ग़ज़ल को आध्यात्मिक विधा माना जाता है, क्योंकि यथार्थ का प्राकट्य जब आत्मपरक शैली में होता है, तो वह अधिक सारगर्भित और सम्प्रेषणीय हो जाता है। पाठक उसे आसानी से आत्मसात कर लेता है। चमन की ग़ज़लों में अनुभूतिपरकता स्थल–स्थल पर द्रष्टव्य है। उनके अशआर में वैयक्तिक अनुभूति कुछ इस तरह से आयी है कि वह प्रतिनिधिक बन गयी है। इससे ग़ज़लकार और पाठक का मनोविज्ञान एकमेव हो जाता है और रचनाधर्मिता सार्थकता ग्रहण कर लेती है।

इनके अशआर में जीवन के विविध प्रसंग मिलते हैं, जो पाठक के मन की भावनाओं को प्रकट करते हुए संवेदना के स्तर पर भी उसे द्रवित करते हैं और आत्मालोचन को भी विवश करते हैं। ये प्रसंग चाहे जीवन–दर्शन के हों, जन–जीवन की व्यथा–कथा कहनेवाले हों, आम आदमी की असहायता या संघर्षगाथा व्यक्त करनेवाले हों अथवा राजनीति के छल–छद्म पर व्यंग्योक्ति करनेवाले हों, सभी ग़ज़लकार के यहाँ शिद्दत से मौजूद है। कुछेक अशआर देखें–

''फना होना ही सच है जिन्दगी का
मगर इन्सान क्या–क्या सोचता है।''

''मौत का यूँ तो रहा पहरा बहुत मगर
जिन्दगी के चार पल हमने चुरा लिये।''

''बाहर है या घर में है,
मन हर वक्त सफर में है।''

''हमको है पानी की चिन्ता, उनको है अंगारों की
हम माँगें रोटी, वे बातें करते चाँद–सितारों की।''

''किसी के हक में कुछ नहीं, किसी पे बेहिसाब है
खुदा! तुम्हारे शहर में ये रस्म लाजवाब है।''

''लोकतंत्र का अबकी ऐसा ताना–बाना बुना गया
जिसकी थैली सबसे भारी, उसको मुखिया चुना गया।''

''टिमटिमाते जुगनुओं की हर पहल नाकाम है
हम शहर में मुद्दतों से इक अँधेरी शाम है।''

''बड़ा झमेला है खेती–खलिहानी में
भैया हो! मन लगता नहीं किसानी में।''

चमन की ग़ज़लों में चित्रात्मकता बहुत खूबसूरती के साथ उभरकर आयी है। उन्हें पढ़ते हुए पाठक स्थितियों से सीधे जुड़ता चला जाता है। एक मनमोहक चित्रावली द्रष्टव्य है।

''पइयां–पइयां आते बच्चे अच्छे लगते हैं
मुस्काते–मुस्काते बच्चे अच्छे लगते हैं।''

कहना न होगा कि हिन्दी ग़ज़ल में ही ऐसा कथ्य सफलतापूर्वक कहा जा सकता है, जिसे चमन ने कर दिखाया है। राजनीतिक, सामाजिक विसंगतियों पर चोट के अतिरिक्त चमन ने श्रृंगार रस की भी कुछ ग़ज़लें कही हैं, पर उनका अंदाज परम्परा से कुछ अलग हटकर है। उनमें शील और मर्यादा का बेहतर निर्वाह देखने को मिलता है। ऐसी ग़ज़लों की शब्द योजना पूरी तरह से तत्सम और गीतात्मक है। उनका बिम्बविधान मन को मोह लेनेवाला है। दो शेर देखें–

''अलकों को लहराकर तुम आयी जो पास
श्वांस श्वांस पैठ गयी संन्दली सुवास।''

''मन भी है, मौसम भी है, वातावरण भी
कुछ शरारत और कुछ मनुहार बोयें।''

रचनाकर्म की सार्थकता इसी में है कि पाठक या श्रोता रचना पढ़–सुनकर उद्वेलित हो और यथेष्ट परिवर्तन को प्रेरित हो। ग़ज़लकार ने इसे बखूबी सिद्ध किया है। संक्षेप में साधारण–सी दिखनेवाली ये ग़ज़लें तासीर में असाधारण हैं। मुझे विश्वास है कि जिस प्रकार ये एक कथाकार के रूप में चर्चित है, उसी प्रकार वे हिन्दी ग़ज़लकार के रूप में भी प्रतिष्ठा प्राप्त करेंगे।

(ग़ज़ल संग्रह 'रोशनी के वास्ते', रचनाकार–अखिलेश श्रीवास्तव चमन लोकोदय प्रकाशन, लखनऊ)

कविताएँ /

श्रीमती प्रतिभा चौहान,
रूहेलखंड विश्वविद्यालय, बरेली (यू.पी.),
मो.–8709755377

तुम्हारा गंभीर समय पर चुप्पी लगा जाना
समय की आपदा है
आपदा है मानवीय सभ्यता की
आपदा है संसार की
शायद साकार–निराकार के बीच
पतली सी नस में बहता संसार है ये
शायद अनेक मंगल मस्तिष्क और हृदय के मध्य
किसी निलय के बीच तैर रहे होंगे
काश! कोई सरकार कर देती आदेश
प्रेम की गलियों के चौड़ीकरण का
क्योंकि वह इस गली में बह रही संभावना है
औरतें सदियों से इन गलियों की बासिंदा
शायद
रेंगती स्मृतियाँ हमारे ऊपर आच्छादित गुलाल हैं
या
भावनाओं का ब्लैक ट्यूलिप है
शायद
यही हमारे समय की क्विलटिंग है।

कविता 2 :
सोना चाहती हूँ बहुत
ताकि ख्वाब पूरे हो जायें
पर मेरी निश्चिन्तता का तकिया कहीं खो गया है
माँ ने बताया
जन्म के वक्त बनाये गये थे वे तकिये
जिनका उधेड़ना बुना जाना नीले आकाश में होता है
और सहेजकर रखना सबसे नायाब हुनर
आजकल बुनने में लगी हूँ अपने सपने
और सहेजने की कोशिश में अपना तकिया
हे नीले आकाश!
प्रार्थना है
मुझे सलीका दो बेमानी का
चुरा लूँ थोड़ वक्त–वक्त से
मुझे तबतक सुकूँ का तकिया मत देना
जबतक मेरी चिन्ता हद से पार न हो जाए
तुम्हारी नाराजगी मेरी कोहनी में लगी चोट है
झटके में सिहर जाता है वजूद

मेरे मस्तिष्क ने खड़े किये हैं बाँध
रुक जाते हैं ख्वाब बहने से
अब तुम ही कहो
किस तरह होता है आदमी निश्चिन्त
तुम मेरे प्रेम की तरफ मत देखो
वह तो इस ब्रह्मांड की सबसे बड़ी बेचैनी है
तुम मत ताको मेरे त्याग की ओर
वह तो स्वयं के सुकून पर छुरी है
तुम मत ललचाओ–मेरे समर्पण पर
वह तो मेरा दूसरों के लिए दान है
तुम मत खोलो–मेरे विश्वास के पिटारे को
मैंने तो उसमें अपनी आँखें बंद की हैं
माँ!
तुम सच नहीं कहती हो
उनके लिए निश्चिन्तता के तकिये नहीं बनाये जाते
जिनमें होती है मानवीय संवेदनाओं की पराकाष्ठा।

कविता 3
तुम्हारी धड़कनों की
हर लफ़्ज की पहली
और आखिरी कहानी हूँ मैं,

नींद में घुले चेहरे सी
कोई तस्वीर उभर आए हर पन्ने पर
इस तरह मुझे तुम्हारी
जिंदगी की किताब बनने की चाहत है...

समय रेत बनकर
मुट्ठियों से फिसल जाएगा।
पर, इस खुले आकाश में
सितारों की आँखों में हमेशा
रहे हमारी ही कहानी
जो शुरू होकर कभी खत्म न हो
ऐसा ख्वाब बनने की चाहत है

खूबसूरत परछाइयाँ यादों से बनती हैं
अरमानों के महल
चमकती आँखों ने देखा है
कोई सपना...

तुम कहते हो मैं सुनती हूँ
तुम गुजरते हो मैं चलती हूँ
तुम हँसते हो मैं जीती हूँ

हमारे रिश्ते की रुबाइयों को
संगीत की धुन
गुनगुना रहा है सारा आसमान
अब
हमारे सुकून के दरिया से
अब इस समुंदर का दायरा भी कम है।

कविता 4
मन की किताबें पढ़ती हूँ
सन्नाटे में
सुरची सूखी स्याही में
मिलाती हूँ उम्मीद की बूँदें
बूँद रिसता है जख्म
यादें
मरहम को भरने
समुद्र की लहरें लिपट जाती हैं,
साँसों की हिचकियों से
बर्दाश्त से बाहर है
रोशनी की चाबुक
लहुलुहान है अंधेरे की चौखट
थम जाने दो
उफान पर है नदी
बह जाने दो रेत का महल
न कदमों की आहट से बनते
दिल की झीलों में छल्ले
न होती हवाओं में हलचल

दिल पर पत्थर की शिलों पर
सलवटें पड़ गई बरसों से
पलकों से करती टुकड़े टुकड़े
न मिटती हकीकत
न पलकों में बूँदें ही गिरेंगी
ग्लेशियर सी
न मुझमें है अब
पिघलने की चाहत...
रोज ग्लेशियर पिघल रहा है
रोज देख रही हूँ...।

कविता 5
धरा का गीत
मेरे दायरे में
सूरज की रोशनी
मेरे दायरे में
चाँद की शीतलता
मेरे दायरे में
शब्दों की ठिठोली
मेरे दायरे में
अथाह समंदर
मेरे दायरे में
लहलहाती किसानों की मेहनत
मेरे दायरे में रात–दिन का होना

उठाती हूँ कलम
तो रात सिमट जाती है स्थाही–सी बोतल में
चाहती हूँ लिखना धरा के गीत
चिड़ियों की चहचहाहट
बादलों का भारी आँचल
समुंदर की परियों के रंग
कोपलों के नृत्य
लहरों की झंकार
पर!
लिख जाता है
फूलों का जलना
पहाड़ों का गिरना
झरनों का जम जाना
पेड़ों का उखड़ना
दिलों की उबासी
मानवता की बिलबिलाती पीठ
और उन जख्मों से रिसता लहू
व्यथा–वेदना...
तुमने जरूर मिट्टी के लोंदों से
कुछ विनाश की पुतलियाँ तैयार की हैं
जो धरा की ग़ज़ल को शोकगीत में परिवर्तित
करने की साजिश रच रही है।

समीक्षा/

यथोचित समीक्षा की तलाश

डॉ. शिवचन्द्र प्रसाद
प्राचार्य
राजकीय महाविद्यालय खैर

एक ऐसा समय था, जब महाप्राण 'निराला' को भी शिकायत थी कि उनका सही मूल्यांकन हिन्दीवाले नहीं कर रहे हैं। जो स्थान हिन्दी जगत् में उन्हें मिलना चाहिए, वह नहीं मिल रहा है और यह तथ्य आज पूरी तरह सत्य है कि 'निराला' पर पहली बार कलम चलानेवाला कोई हिन्दी का विद्वान नहीं, अपितु अंग्रेजी का रहा। रामविलास शर्मा के बाद ही निराला जी महाप्राण आदि घोषित हुए और धड़ाधड़ समीक्षाएँ और स्थापनाएँ आने लगीं। छायावादी कवियों को भी स्वयं अपने बारे में लिखना पड़ा था। बहुत पहले देखा जाय तो कबीर और मीरा भी उपेक्षित रहे, जिनका वास्तविक मूल्यांकन अब हुआ है। यही अपेक्षा और उदासीनता का भाव समीक्षा जगत् में गीत और नवगीत को लेकर है। कविता का मूल्यांकन तो खूब हुआ है, परन्तु गीत और नवगीत तिरस्कृत हो रहे हैं। अपने प्रति इसी हिकारत को देखकर गीतकार और नवगीतकार अपनी समीक्षा स्वयं लिखने के लिए तत्पर हैं और सही भी है, क्योंकि मुर्गा यदि बाँग नहीं देगा तो क्या सबेरा नहीं होगा?ऐसा ही सार्थक प्रयास किया है, गीतकार वीरेन्द्र आस्तिक ने अपने ग्रंथ 'नवगीत समीक्षा के नये आयाम' में।

इस ग्रंथ में समीक्षक 'वैचारिक' और 'व्यावहारिक' दो भागों में विभक्त कर गीत–नवगीत का समुचित मूल्यांकन करने का प्रयत्न किया है और ऐसा करके वे पूरी तरह सफल भी रहे हैं। वैचारिक भाग में 15 शीर्षकों के माध्यम से गीत–नवगीत में अंतर, उनकी रचना–प्रक्रिया, उनका क्रमिक विकास, पूर्वाग्रह और पारदर्शिता, नवगीत, जनगीत, समकालीन गीत, नव–प्रयोग एवं प्रभावकता और गीत–नवगीत तथा संगीत के पारस्परिक संबंधों पर गहन विचार किया गया है। इसी प्रकार 'व्यावहारिकी' में गीत समीक्षा के विविध आयामों, रचना एवं समीक्षा अंतरसंबंधों, समीक्षा की विभिन्न समस्याओं पर दृष्टिपात किया गया है। इसी भाग में भवानी प्रसाद मिश्र, मधुसूदन साहा, राधेश्याम शुक्ल, मयंक श्रीवास्तव, मधुकर अस्थाना, निर्मल शुक्ल, डॉ. अशोक शर्मा, कृष्णमोहन अम्मोज आदि गीत–नवगीतकारों की कृतियों की समीक्षा के बहाने गीत–परम्परा और उसकी विशेषताओं और कमियों की सम्यक् पड़ताल की गयी है। इसी खण्ड के भाग दो में 'अपने ही घेरे में गीतवसुधा' में नचिकेता की मार्क्सवादी समीक्षा पर कुछ जायज कुछ नाजायज आपत्तियाँ हैं, तो 'अलाव' में डॉ. प्रेमशंकर रघुवंशी के आलेख की प्रतिक्रिया भी है, जिसमें डॉ. प्रेमशंकर द्वारा गीत के अनावश्यक महिमा–मंडन से असहमति और पाठ, गायन तथा संगीत संबंधी स्थापनाओं का विरोध दर्ज है। समीक्षक द्वारा गीत की अन्तर्वस्तु लय, छंद और गेयता पर सविस्तार विचार किया गया है। डॉ. प्रेमशंकर रघुवंशी का मानना है कि 'गीत पढ़ा जाता है, उसे गाया नहीं जाना चाहिए।' दूसरी बात–'गीत को संगीत के क्षेत्र में प्रवेश नहीं करना चाहिए।' (पृ. 180) इसके विरुद्ध समीक्षक (वीरेन्द्र आस्तिक) की मान्यता है कि ''सच्चाई ये है कि गीत का संगीत से सीधा–सीधा कोई संबंध नहीं है, किन्तु लय, टेक और तुक आदि संगीत के भी आवश्यक अंग हैं। गीत और संगीत के ऐसे संबंध से गीत का गायन के क्षेत्र में प्रवेश कर जाना स्वाभाविक है।'' (पृ. 180) इसी स्थल पर कुछ समीक्षकों के इस मत पर कि 'कविता रची जाती है और गीत फूटता है' पर भी विचार किया गया है। इस संदर्भ में समीक्षक का प्रश्न है कि गीत फूटता है तो क्या कविता नहीं फूट सकती है, क्या गीत नहीं रचा जाता?आखिर गीत को इतना महिमामंडित करने की क्या जरूरत है?कहने का आशय यह है कि कुछ अनर्थ तो आलोचकों की परिभाषाओं और व्याख्याओं ने किया, पर उससे ज्यादा अनर्थ समझनेवालों से हुआ।

इसी खंड में 'अलाव' के ग़ज़ल विशेषांक की प्रतिक्रिया के बहाने हिन्दी ग़ज़ल और उसकी समीक्षा–दृष्टि पर गहन गंभीर स्थापनाएँ प्रस्तुत की गयी हैं, जहाँ डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी, डॉ. विजय बहादुर सिंह, डॉ. मैनेजर पाण्डेय, डॉ. जीवन सिंह की समीक्षा दृष्टि से असहमत समीक्षक (वीरेन्द्र आस्तिक) इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि ''ये बड़े आलोचक न तो समकालीन आलोचना की संकीर्णताओं से निजात पाने का प्रयत्न करते हैं, न ही ग़ज़ल की कहन–पद्धति और उसकी अन्तर्वस्तु को आलोचना में स्थान देना चाहते हैं।'' (पृ. 191) इसके विपरीत दीपक साहनी, महेन्द्र नेह, प्रभा दीक्षित, अमीरचंद वैश्य, जियाउर्रहमान जाफरी जैसे समीक्षकों से पूरी तरह आश्वस्त हैं। ऐसी आलोचनाओं को समीक्षक चौराहे पर भटकी हुई आलोचनाओं का करारा जवाब मानता है। इस ग्रंथ के मूल आलोचना का यही भटकाव और गीत–नवगीत का तिरस्कार है, जब एक गीत–नवगीत को समीक्षा के लिए स्वयं लेखनी उठानी पड़ती है। इस कथन में पूरी सच्चाई है कि ''जब पारंपरिक आलोचक नये–नये सिद्धांतों को प्रतिपादित करने में असमर्थ से दीखते हैं, तब रचनाकार को स्वयं आलोचक बनना पड़ता है।'' (पृ. 76) जब मुख्यधारा से ठेलकर हाशिए पर फेंकने की साजिश होती है, तो ऐसे कदम उठाने ही पड़ते हैं।

गीत और संगीत के साथ मानव का उसके जन्म के साथ ही अभिन्न संबंध रहा है, चाहे वह लोकगीत और लोकसंगीत के रूप में रहा हो, परन्तु इसी प्रतिफलनस्वरूप गीतों का जन्म हुआ। गीतों की लोक–सापेक्षता और लोकरंग इसके प्रमाण हैं। गीत यहीं रुककर जड़ नहीं हुआ, अपितु उसमें नित नवप्रयोग होते रहे हैं। समीक्षक के अनुसार गीतों का प्रयोगधर्मी होना ही नवीन होता है। (पृ. 51) कहीं गीतकार डॉ. केदारनाथ सिंह ने लिखा है कि 'गीत लिखना तनी रस्सी पर चलने के समान (कठिन) है', इधर वीरेन्द्र आस्तिक भी लिखते हैं–''गीत जितना सरल दिखता है, उसकी रचना–प्रक्रिया उतनी ही जटिल होती है। (पृ. 161) गीत और नवगीत के अंतर को स्पष्ट करते हुए वीरेन्द्र आस्तिक लिखते हैं–''गीत, गीतकार का निजी भाव है। इसके विपरीत नवगीत सोद्देश्य होता है। विचारधारा का पक्षधर होता है।'' (पृ. 30) वे नवगीतों की तुलना छायावादी गीतों से करने के लिए तो सहमत हैं, परन्तु छायावादोत्तर काल के गीतों से बिल्कुल नहीं। वे नवगीत को 'आजादी के बाद की व्यवस्था से मोहभंग की विदग्ध, मारक एवं यथार्थवादी भाषा' मानते हैं।

गीत–नवगीत के अंतस्संबंध और वैभिन्नता पर विचार करते हुए समीक्षक का मानना है कि इन दोनों में भिन्नाभिन्न संबंध है। यही कारण है कि प्रिय गीतकार किशन सरोज, वरिष्ठ नवगीतकार माहेश्वर के लिए नवगीतकार की श्रेणी में आ जाते हैं। समीक्षक का भी मानना है कि ''किशन जी रोमानी–चेतना के कवि हैं। उनके गीत भाषा के उस पुल से गुजरते हैं,

जहाँ गीत और नवगीत एक रस हो जाते हैं। (पृ. 23) समीक्षक के अनुसार नवगीत जीवन–राग का विराट स्वरूप है, जिसमें शोषण–उत्पीड़न, गरीबी के साथ–साथ जीवन के हर्षोल्लास, नैसर्गिकता, लालित्यपूर्ण सौंदर्य, प्रेम–प्रणय आदि सभी कुछ समाहित हैं। यहीं समीक्षक नवगीतों के 'कामन कथ्य' और 'कामन लय' से चिंतित है, क्योंकि इसके कारण नवगीतों से नवीनता गायब होती चली जा रही है और वे जड़ता एवं यथास्थिति के शिकार होते जा रहे हैं। 'वे निरर्थक सी बात बनकर समय से बाहर होते जा रहे हैं।' इसके लिए वे प्रसिद्ध गीतकार बुद्धिनाथ मिश्र के प्रसिद्ध 'गीत' एक बार जाल फेंक रे मछेरे का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं और प्रश्न रखते हैं कि किस मछली में बंधन की चाह होती है?मछली (शोषित) बंधन (शोषण) कब चाहती है?यह अर्थबोध जब पाठकों को हुआ तो 'उक्त गीत स्वतः निरपेक्ष भाव से खारिज हो गया।' समीक्षक के अनुसार–'पाठकों और रचनाकारों में गीत–नवगीत की इतिहास– दृष्टि जितनी विकसित होगी, सापेक्षता के आधार पर या अन्तर्वस्तु के आधार पर गीत और नवगीत के पार्थक्य का स्वागत होगा।'' (पृ. 27) यही विकसित इतिहास–दृष्टि और नवीनता की खोज या नवीन–प्रयोग गीत–नवगीत को जन–गीत समकालीन और गीतिका (ग़ज़ल) तक लेकर आये हैं।

समीक्षक की चिंता का विषय है–गीत–नवगीतों की भाषा और कथ्य की पुनरावृत्ति, जिसके चलते गीत–नवगीत प्रभावहीन हो रहे हैं। इन सबके चलते जो वास्तविक सर्जना है, वह मूल्यांकित नहीं हो पा रही है। (पृ. 43) 'साहित्य संप्रेषणीय तभी हो पाता है, जब वह समय की भाषा में प्रकट हो, तभी वह आम जनता तक पहुँच पाता है। कोई भी साहित्य कालजयी तभी हो पाता है, जब उसमें मनुष्य–जीवन की मांगलिकता के सभी तत्त्वों की वस्तुगत और आत्मगत पैठ हो?(पृ. 77) 'रचनाकार को कथ्य और भाषा की नई जमीन को तोड़ने का खतरा' उठाना होगा। सपाटबयानी से बचते हुए यथार्थ के धरातल पर लयात्मक भाषा की नई शक्तियों की खोज करनी होगी। (पृ. 163) जैसे भवानी भाई गीत कविता पर बोलचाल की भाषा का पानी चढ़ाते हैं। (पृ. 128) कुछ ऐसा ही। सारांश यह कि समय की भाषा में सामयिक कथ्य, इसी को समीक्षक, साहित्य के प्रतिमान के रूप में स्थापित करता है–''समय की जो सबसे बड़ी चुनौती होती है, वही साहित्य का प्रतिमान कहलाता है। (पृ. 94) समीक्षक के अनुसार आलोचना सिर्फ आलोचना के लिए नहीं, अपितु सर्जनशक्ति की पहचान के लिए होनी चाहिए 'एक आलोचक को आलोचना के अरण्य से निकलकर रचना के उपवन में रमना और उपवन की उपलब्ध अनुभूतियों से अरण्य–स्मृतियों की ओर लौटना (130) होगा अर्थात् रचना को रचनाकार की व्यापक अनुभूतियों के धरातल पर देखना होगा। यानी कृति की समीक्षा कृति से होकर उसकी व्यापकता में होनी चाहिए।

अंत में समीक्षक के मानववाद 'मनुष्यता, मानवता, सामंजस्य, समन्वय आदि बनाम वर्गवाद पर विचार करना आवश्यक है। मैंने प्रारंभ में ही समीक्षक द्वारा गीतकार–समीक्षक नचिकेता पर की गई टिप्पणियों को जायज और नाजायज दोनों कहा है, तो स्पष्ट करना भी आवश्यक हो जाता है कि कितनी जायज और कितनी नाजायज टिप्पणियाँ हैं?नचिकेता की यह स्थापना कि केदारनाथ अग्रवाल के गीत, नवगीतों के उत्स हैं, उससे सहमत होना निराला के गीतों की अवहेलना और उपेक्षा है। केदारनाथ अग्रवाल के गीतों का 'लोकधुनों' पर आधारित होना और 'समय सापेक्ष होना' ही नवगीतों के उत्स हैं, तो क्या निरालाजी के गीत लोकोन्मुख और समय सापेक्ष नहीं है?इसके संदर्भ में आलोचक वीरेन्द्र आस्तिक सही ही लिखते हैं कि–''नचिकेता निराला को जनोन्मुखता की चर्चा ही नहीं करते। माना कि केदार बाबू 1946 से चर्चित होते हैं, किन्तु निराला का महाप्राणत्व 1936 तक प्रकाशित होकर लोकप्रियता के शिखर पर था।'' (173) इस संदर्भ में वे भिक्षुक, 'तोड़ती पत्थर' और 'सरोज–स्मृति' आदि जनोन्मुखी कविताओं का हवाला देते हैं। उधर वे नचिकेता की ग़ज़ल–समीक्षा दृष्टि से प्रशंसा भी करते हैं। उनके द्वारा 'उठाये गये मुद्दों (191) में ग़ज़ल का भविष्य भी देखते हैं।

प्रश्न मानववाद–वर्गवाद और विचारशून्यता को लेकर है। समीक्षक मनुष्यता–मानववाद और समन्वय–सामंजस्य में इस कदर भूल जाता है कि जब समाज शोषक और शोषित दो वर्गों में विभक्त है (जैसा कि समीक्षक भी मानता है और शोषित की ही बात करता है) तो संपूर्ण मानव हित कहाँ संभव है?जो शोषक का हित है, वह शोषित का नहीं और जो शोषित का है, वह शोषक का नहीं। ऐसी स्थिति में 'मनुष्य ही साहित्य के केन्द्र में है और खानों में नहीं बँटा है। (46) मनुष्य ही समाज के हितार्थ (63) 'समन्वय के बजाय संस्कृति और आधुनिकता के सौंदर्यबोध विरोधाभासी हो गये हैं।' (150) फिर 'भारतीय चिंतन में सामंजस्य बिठाने की अद्‌भुत कला है।' (182) जुड़ाव सम्पूर्ण मानव जाति की पूरी संवेदना से है। (89) तो क्या 'मानव' में शोषण नहीं है। संपूर्ण में तो उसे भी शामिल होना चाहिए। फिर आप ही विभाजित भी कर रहे हैं–''कौवा उसी शोषण वर्ग का प्रतीक है और यही आम जनता ('सर्वहारा' न कहने के लिए पूरी तरह से आप सतर्क हैं) है, जो शोषक के 'घर की बकरी है।' (149) अब जब दो वर्ग है तो दोनों की परस्पर विरोधी विचार–धाराएँ भी होंगी। तो एक साथ 'संपूर्ण' का हित कैसे हो जाएगा। मार्क्सवाद का दोषमात्र इतना हो गया कि उसने आपके 'शेर–बकरी' की अलग–अलग पहचान करा दिया। इस गुनाह के लिए उसे चाहे जितनी बार दफनाना चाहें दफनाएँ।

हाँ, समीक्षक के इस मत से भला कौन असहमत हो सकता है, जब लिखता है–''लेखक में यदि विश्वद्रष्टा होने का माद्दा है तो वह विचार को गौण करते हुए सीधे परिस्थितियों/तकाजों से विमर्शात्मक/द्वन्द्वात्मक निष्कर्ष निकालता चलता है।'' (176) यह सच है कि लेखकीय ईमानदारी और उसकी व्यापक विश्वदृष्टि किसी भी रचना को महान बनाती है, परन्तु यह भी सच है कि वहाँ भी कोई न कोई विचारधारा अथवा प्रतिबद्धता हुआ करती है। विचारशून्यता तो वहाँ भी नहीं होती है। अब चाहे टॉलस्टाय, बाल्जाव अथवा मुंशी प्रेमचंद, निराला हों, विचारधारा और प्रतिबद्धता हर जगह है, चाहे नाम जो दे दिया जाय। टॉलस्टाय के अपने ही वर्ग की निंदा, निराला, मुंशी प्रेमचंद आदि की चिंता के विषय क्या हैं, इन सबके उत्तर कहीं न कहीं उन्हें जोड़ते हैं और जाहिर है कि वह शोषित वर्ग ही है। इसे समीक्षक भी स्वीकार करता है। बस शब्दावलियों का खेल है अन्यथा नचिकेता और वीरेन्द्र आस्तिक दोनों ही उस संदर्भ में प्रकारान्तर से एक ही बात करते हैं। एक विचारधारा मानता है, दूसरा विश्वदृष्टि और पहुँचना दोनों का एक ही जगह है।

कुल मिलाकर यह ग्रंथ समीक्षक की गहन दृष्टि का प्रतिफलन है। ग्रंथ को पढ़ने के बाद ऐसा लगता है कि गीत–नवगीत और खासकर ग़ज़ल के मामले में मेरे जैसे पाठक समीक्षक के समक्ष निरे शिशु हैं, यह ग्रंथ गीत–नवगीत के शोधार्थियों और इस विधा के प्रेमियों के लिए अत्यन्त मूल्यवान है।

समीक्षा /

घोटुल से बिग बॉस तक का सफर

डॉ. अरुण कुमार
प्रवक्ता (हिन्दी)
जवाहर नवोदय विद्यालय
पदमी, मंडला (म.प्र.)
मो0–9754128757

'बिग बॉस एक नया घोटुल' श्रीअरुण कुमार सिन्हाजी की पुस्तक जिसका प्रथम संस्करण 2020 में रुद्रा पब्लिकेशन, विलासपुर से प्रकाशित हुआ है। लेखक इलेक्ट्रिकल इंजीनियर होने के साथ कामगारों के बीच रहते हुए सेवानिवृत्त के उपरांत सात सालों तक सेवा विस्तार के बाद साहित्य की सेवा में स्वयं को समर्पित कर तीन पुस्तकों की रचना की। लेखक का अध्ययन विस्तृत है। उन्होंने भारतीय परंपराओं का अध्ययन कर वर्तमान से जोड़ने का सराहनीय कार्य किया है। उसी परिणामें का प्रतिफल प्रस्तुत पुस्तक है। 'घोटुल' संथाल जनजातियों की एक प्राचीन परंपरा है, लेखक वहाँ से 'बिग बॉस' के रास्ते इंग्लैंड में 'बिग ब्रदर', अमेरिका में 'हाउस ऑफ अमेरिका', स्विटजरलैंड में 'स्विस सुशी' के 'स्पिलिट विला' की पड़ताल के साथ आधुनिकता के नशे में आत्मकेन्द्रित होते मानव की उद्देश्यहीन दौड़ को रेखांकित किया है। यह पुस्तक ऐसे समय में आई है, जब जनजातीय परंपराएँ अंतिम साँसें गिन रही हैं और हम आधुनिकता का दावा करते हुए उन्हीं परंपराओं को नए बोतल में स्वीकार करते हुए खूब वाहवाही लूट रहे हैं, जिसे समाप्त करने के लिए बहुत सारे अभियान और योजनाएँ उस दौर में चला चले रहे थे। यह तो उसी तरह से है, जैसे मोटा अनाज खाने के कारण ग्रामीण पिछड़े कहलाते थे, आज वही 'पॉपकान' बनकर हमारी शानशौकत का प्रतीक बन गया है। पुस्तक पुरानी परंपरा बनाम नई जगमगाती रोशनी के बीच हमारे अस्तित्व की लड़ाई लड़ रही है। यहाँ नये–पुराने का टकराव नहीं है, बल्कि दोनों के बीच की साम्यता का बहुत ही बारीकी से मूल्यांकन किया गया है। पुस्तक न कहीं पुरानी मान्यताओं का आग्रह करती नजर आती है और न ही नये के प्रति कोई झुंझलाहट है। यह पाठक दोनों को समझने का अवसर प्रदान करती है।

'घोटुल से बिग बॉस तक का सफर' आलेख के माध्यम से 'बिग बॉस एक नया घोटुल' पुस्तक के कथ्य को समझने और उसकी विशेषताओं को प्रकाश में लाने का एक प्रयास है। लेखक संस्मरणात्मक शैली में अपने बारह–तेरह वर्ष की आयु की स्मृति को वर्तमान के साथ जोड़ने का प्रयास है। आज 'घोटुल' लगभग समाप्ति की कगार पर है। कम ही लोग उस परंपरा को जानते हैं। यह पुस्तक जहाँ एक ओर 'घोटुल' जैसी प्राचीन परंपरा से हमारा परिचय कराती है, वहीं दूसरी ओर आधुनिकता के दंभ में मस्त नया होने की घोषणा के तार को प्राचीन परंपरा से जोड़कर उसके महत्व को बढ़ाने का कार्य करती है। संथाल परगना और 1855 के संथाल विद्रोह के विषय में अक्सर सुना और पढ़ा करते हैं। संथाल का मुख्यालय दुमका है और इस इकाई में झारखंड के छः जिले–गोड्डा, देवघर, दुमका, जामताड़ा, साहेबगंज और पाकुड़ शामिल हैं। विवेच्य पुस्तक संथाल की 'घोटुल' परंपरा से हमारा परिचय कराती है और वर्तमान में भारत में 'बिग बॉस', इंग्लैंड में 'बिग ब्रदर', अमेरिका में 'हाउस ऑफ अमेरिका', स्विटजरलैंड में 'स्विस सुशी' जैसे पोपुलर क्लबों को उसका स्रोत बताते हुए उनसे महत्त्वपूर्ण बताया गया है। लेखक कहता है–''बिग बॉस के घर और घोटुल के कमरे में फर्क क्या है?फर्क है तो प्रेम का, सच्चाई और ईमानदारी का। जहाँ घोटुल के निवासियों के बीच प्रेम भाव और सामंजस्य बढ़ता है, वहाँ बिग बॉस के लोग आपस में कुत्ते–बिल्लियों की तरह एक दूसरे से लड़ते हैं।'' (बिग बॉस एक नया घोटुल, पृ. 20)

विवेच्य पुस्तक 'घोटुल' से हमारा परिचय कराती है। जनसंचार क्रांति के युग में इलेक्ट्रॉनिक्स मीडिया बाजारवाद को ही प्रश्रय दे रहा है, लेकिन प्रिंट मीडिया वर्तमान में भी संतुलित रहते हुए परंपरा और नवीनता के बीच सामंजस्य स्थापित किये हुए है। इस परंपरा को प्रकाश में लाने में यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी साबित होगी। लेखक लिखता है–''यह बहुत पुरानी परंपरा है। यहाँ पन्द्रह से बीस साल तक की ही लड़कियाँ आती हैं और अट्ठारह से पच्चीस साल के लड़के। हर किसी को यह अवसर दो बार मिलता है, चार–चार महीने के लिए। हो सकता है कि यह उम्र की सीमा पहले और कम रही हो। एक बहुत बड़ा कमरा होता है। इसमें सभी लड़के और लड़कियाँ एक साथ रहते हैं, वर्जनामुक्त। दरअसल घोटुल का यही पहला उद्देश्य है कि वे लोग वैवाहिक जीवन के लिए तैयार हों, एक दूसरे के शरीर के रहस्यों को समझ सकें। इसे आप 'यूथ डोरमेटरी' कह सकते हैं। दो तीन बूढ़े आदमी 'घोटुल' की देखभाल करते हैं। इसे आप एक तरह से 'टीचिंग इंस्टीच्यूट' कह सकते हैं। यह उन्हें अपनी सभ्यता और संस्कृति को समझने तथा उससे सामंजस्य स्थापित करने के लिए तैयार करते हैं। (बिग बॉस एक नया घोटुल, पृ. 17) ये रही घोटुल की दुनिया। लेखक इस परंपरा की और जानकारियों के साथ–साथ वहाँ के मेले और मेले में समूह नृत्य का दृश्य, वहाँ के देवता एवं उस परंपरा से जुड़ी शब्दावली और बहुत सारी जानकारियों से परिचय पुस्तक के द्वारा कराता है।

लेखक 'बिग बॉस' और 'घोटुल' की तुलना करते हुए लिखता है कि जहाँ 'बिग बॉस' में सिर्फ पैसे का खेल है, जीवन की रंगीनियत और आरामदेय व्यवस्था है, वहीं 'घोटुल' में पूँजी का कोई समावेश नहीं है। जनजातीय अर्थव्यवस्था एक उत्पादन उपयोग आर्थिकीय होती है। इसमें अधिशेष अर्थ का कोई स्थान नहीं होता। संचय इसका चरित्र नहीं है। यही हमारी प्राचीन परंपरा है। जिस जीवन शैली की ओर हम बढ़ते जा रहे हैं, वह कहने और सुनने के लिए ऐशोआराम का जीवन है, सच्चाई तो यह है कि वह हमें दु:ख के सागर की ओर ले जा रहा है। जीवन में सिर्फ संत्रास है पूर्णता का कोई नामोनिशान नहीं है। पुस्तक में वर्णित है–''काश! हमलोग देख पाते कि 'बिग बॉस' की जगमगामी जागती एलईडी लाइटों के पीछे कितना अँधेरा बिखरा हुआ है। 'घोटुल' के कमरे के अँधेरे को भी शर्मिन्दा करता हुआ। जंगल दुनिया और घोटुल कल्पनातीत है।'' (बिग बॉस एक नया घोटुल, पृ. 20)

आदिवासी संस्कृति प्रकृति के बहुत करीब है। आदिमानव का मतलब हमारा प्राचीनतम मानव। परन्तु आज उलटी इसकी परिभाषा है। इसे हम जनजातीय संस्कृति कहकर इससे अपने को अलग करते हैं। सिर्फ अलग ही नहीं, अपने को सभ्य और आधुनिक भी करार देते हैं। आधुनिकता की इसी होड़ ने हमारे आदिम जीवन मूल्यों को नष्ट किया है। प्राचीनकाल में हम प्रकृति के जितने करीब थे, आज उतने ही दूर होते जा रहे हैं। जंगल के स्थान पर उग रहे हैं कंक्रीट के जंगल। लेखक भी इस बात को लेकर चिंतित है। वह लिखता है–''पेड़ों के जंगल कंक्रीट के जंगल बन गये हैं। कंक्रीट के ये जंगल जहाँ दिन हो या रात बिना अनुमति के रोशनी की हल्की भी किरणें प्रवेश नहीं कर सकती। इनकी दीवारें जंगल के पेड़ों और पत्तियों की तरह पारदर्शी नहीं होती, सारे गुनाहों, अनाचारों और चीख–पुकारों को अपने अंदर जब्त कर लेती हैं। जंगल के हिंसक पशुओं से ज्यादा खूँखार इंसान अकेले या पूरा गिरोह बनाकर इसमें निश्चिन्त होकर घूमते और शिकार करते हैं। सच कहा जाय तो इंसानों की तुलना जानवरों से करना जानवरों का अपमान है।'' (बिग बॉस एक नया घोटुल, पृ. 27) संथाल परगना की माटी में जन्मी कवयित्री 'निर्मला पुतुल' विलुप्त होती संस्थाली संस्कृति पर चिंतित हैं। वे लिखती हैं–

''उठो कि अपने अंधेरे के खिलाफ उठो
उठो अपने पीछे चल रही साजिश के खिलाफ
उठो कि तुम जहाँ हो वहाँ से उठो

जैसे तूफान से बवंडर उठता है
उठती है जैसे राख से दबी चिंगारी
देखो अपनी बस्ती के सीमांत पर
जहाँ धराशायी हो रहे हैं पेड़
रोज नंगी होती बस्तियाँ
एक रोज माँगेंगी तुमसे
तुम्हारी खामोशी का जवाब।''

लेखक विवेच्य पुस्तक में 'घोटुल' के साथ–साथ सभ्य लोगों के 'घोटुल' के विषय में भी जानकारी देता है। यह सब जगह रूप बदलकर मौजूद है। किसी को असभ्य कहकर नकार दिया जाता है, तो कहीं सभ्य समाज का खेल मानकर स्वीकार कर लिया जाता है। लेखक ड्राइवर के द्वारा सभ्य समाज के 'घोटुल' को भी इस पुस्तक में स्थान दिया है। संतान–प्राप्ति के लिए सभ्य स्त्रियों का मंदिर में जाना भी लेखक ने 'घोटुल' ही माना है–''घोटुल हर जगह मौजूद है। बस अपना रूप बदलकर, नये–नये मेकअप में। क्या आप को मालूम नहीं पितृसत्ता समाज में पुरुष के निःसंतान होने पर उसे नामर्द कहते हैं। यह कितनी बड़ी विभीषिका है और इस समाज में केवल पुरुष ही अपमानित नहीं होता, स्त्री भी उससे कई गुना अपमानित होने को अभिशप्त है।...संतान प्राप्ति के लिए अपनी सीमा में रहकर दोनों कई धार्मिक स्थानों पर जाकर पूजा अपर्ण करते हैं। लेकिन संतान की प्राप्ति नहीं होती है। यह बात सभी धर्मों में सत्य है। कोई तीर्थयात्रा करता है। कोई मजार जाकर चादर चढ़ाता है। फिर पुत्र–प्राप्ति के लिए ऐसे ही प्रयत्न और अनुष्ठान कराते हैं, जहाँ संतान–प्राप्ति के लिए अन्य विकल्पों को भी अपनाना पड़ता है।'' (बिग बॉस एक नया घोटुल, पृ. 46) लेखक ने इसे भी घोटुल का एक रूप माना है।

लेखक ने साठ साल की घटना को वर्तमान से जोड़ने में सफलता तो पाई है, साथ ही उसने महाशक्ति अमेरिका की जीवन और संस्कृति से पाठकों का परिचय भी कराया है। वहाँ के होटल की रंगीनियत, देहव्यापार की परंपरा, एकाकी जीवन के साथ–साथ जुए की परंपरा का भी वर्णन किया है। आदिवासी मेले में लेखक के साथ का कर्मचारी पैसा लगाया था और अमेरिका में खुद लेखक ने पैसा लगाया और दोनों जगह हार मिली। वहाँ के होटलों की रौनक के संदर्भ में लेखक लिखता है–''रात का बाजारे हुश्न दिन को कब्रिस्तान की सी खामोशी बदल जाता है।'' सुविधा के नाम पर वहाँ अभाव है। सैलून, पब्लिक, ट्रांसपोर्ट की कमी है। टेलर नहीं होते। सारा काम मशीन के हवाले है। अमेरिका के होटल की दासताँ लेखक की जबानी सुनिये–''अमेरिका के होटलों को देखकर हमें अपनी हॉस्पीटल टी सेक्टर और होटलों पर बहुत गर्व होगा। वहाँ प्रवेश करने पर कोई सलाम ठोककर दरवाजा खोलनेवाला नहीं है। कोई सामान उठानेवाला नहीं है।... विदेशों की सारी रंगीनियों की कहानियाँ झूठी हैं। सारे जहाँ से अच्छा हिन्दुस्ताँ हमारा।'' (बिग बॉस एक नया घोटुल, पृ. 34)

निष्कर्षतः सिन्हाजी ने 'बिग बॉस एक नया घोटुल' पुस्तक के द्वारा प्राचीन भारतीय संस्कृति के अनछुए पहलुओं को उकेरने का कार्य किया है। किस तरह से प्राचीनता का हम खडन करते हुए नये रूपों में उसी को अच्छा बताने का ढोंग रच रहे हैं, लेखक इसका भी भंडाफोड़ करता है। यह सिर्फ भारत की ही नहीं हर देशों की कहानी है। लेखक ने 'घोटुल' परंपरा के माध्यम से यह भी सिद्ध करने का प्रयास किया है कि परंपराएँ घूम–फिरकर फिर वहीं आ जाती है, जहाँ से हम चलना शुरू करते हैं। इस पुस्तक में नये का स्वागत है तो पुराने के जाने का गम भी है। अतीत, वर्तमान, देश और विदेश सभी के चित्रण में लेखक को सफलता मिली है। इसका प्रमुख कारण है शब्दों का चयन और उसका प्रवाह। कथा की गतिशीलता में कहीं भी ठहराव नहीं है। इस पुस्तक के माध्यम से लेखक वर्तमान के मुहाने पर खड़ा होकर अतीत के सामाजिक, सांस्कृतिक और मानवीय मूल्यों की महत्ता को ही नहीं बताता, बल्कि भविष्य के लिए उसे संजोने का कार्य भी किया है। पुस्तक छोटे और बेहतरीन कलेवर में जनजातीय चित्रों के आकर्षण से पाठकों को अपनी ओर आकर्षित कर रही है। यह पुस्तक लोगों में चिंतनशीलता को बढ़ाने के साथ ज्ञान और आनंद के संचार में सहायक सिद्ध होगी–ऐसा मेरा विश्वास है।

(प्रकाशक–लक्की इंटरनेशनल, दिल्ली–80)

चार गीतिकाएँ /

कैलास मनहर,
स्वामी मुहल्ला मनोहरपुर
जयपुर (राजस्थान)
मो. 9460757408

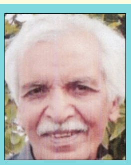

1.
खुश न होना बिसार कर उसको
देखो दिल में उतार कर उसको

झूठे मन से ही सही लेकिन तुम
मानते हो ही हार कर उसको

कोई कचरा नहीं कि तुम जैसे
फेंक देंगे बुहार कर उसको

तुमने मारा मगर वो जीवित है
मर गये तुम ही मार कर उसको

अब भी तुम उससे माँग लो माफी
प्यास से बस पुकार कर उसको।

2.
मैं सहारा में उमगना चाहता हूँ
तन्हा रातों में जगना चाहता हूँ

नहीं लगता है मेरा मन यहाँ पर
मैं सबसे दूर भागना चाहता हूँ

कहीं दिख जाये कोई पेड़ बूढ़ा
उसके सीने से लगना चाहता हूँ

धुआँ देती है जैसे गीली लकड़ी
बिना दहके सुलगना चाहता हूँ

कैसी कमबख़्त दुनियादारी है
मैं अपने को ही ठगना चाहता हूँ।

3.
घास छीलूँ कि भाड़ झौंकूँ मैं
चोर को देखते ही भोंकूँ मैं

बाड़ ही खाये खेत को जब तो
क्यों न हैरत में पड़ के चौंकूँ मैं

पत्थरों को भी देवता समझूँ
हरेक चौखट पे माथा धोकूँ मैं

भीड़ के बीच मैं अकेला ही
पूरी क्षमता से पाँव ठोकूँ मैं

जब लुटेरे घुसे हों बस्ती में
शेर बोलूँ कि उनको रोकूँ मैं।

4.
काश! यह हरसिंगार हिल जाये
मुझको भी कुछ सुकून मिल जाये

कब से बैठे हैं रहगुज़र पर हम
आये अब तो वो संगदिल आये

आये शायद बहार ऐसे भी
उनकी यादों से चमन खिल जाये

चल पड़े हैं तो चले पड़े हैं अब
राह में कोई भी मुश्किल आये

क्या गज़ब है मेरे ज़नाजे को
कंधा देने मेरा क़ातिल आये।

समीक्षा /

भगवती प्रसाद द्विवेदी की काव्य–संवेदना

जितेन्द्र कुमार,
मदनजी का हाता, आरा,
मो.–7979011585

जमाना मुक्तक काव्य का है। जीवन के छोटे–छोटे प्रसंग, परिवेश, प्रकृति और समाज मुक्तक काव्य के विषय बन रहे हैं। जीवन का यथार्थ बदला है। पारिवारिक–सामाजिक रिश्तों में व्यापक तनाव और खटास आया है। उपर्युक्त विषयों पर मुक्तक कविताएँ लिखी जा रही हैं। जिंदगी में इतना रफ्तार आया है, व्यस्तताएँ बढ़ी कि प्रबंध काव्य महाकाव्य पढ़ने का मनुष्य के पास समय नहीं है और बिना साहित्य के संवेदना का निर्माण भी संभव नहीं।

भगवती प्रसाद द्विवेदी भोजपुरी और हिन्दी के उल्लेखनीय रचनाकार हैं। उन्होंने प्रचुर लिखा है और कई विधाओं में लिखा है–कहानी, कविता, नवगीत, व्यंग्य, लघुकथा, निबंध, आलोचना, बालगीत, बालकहानियाँ, आदि। उन्होंने ग़ज़ल भी लिखी हैं।

मैं यहाँ उनके सद्यः प्रकाशित कविता संग्रह 'एक और दिन का इजाफा' (2019) की चर्चा करना चाहता हूँ। संग्रह में इक्कीस समकालीन कविताएँ और चालीस नवगीत संकलित हैं। नवगीतों का एक संकलन 'नयी कोपलों की खातिर' पहले प्रकाशित है।

कई कवियों ने मानवीय मूल्यों की दृष्टि से समकालीन समय की पहचान खतरनाक समय के रूप में की है। द्विवेदीजी की इक्कीस पंक्तियों की एक कविता का शीर्षक है–ऐसे खतरनाक समय में। अभी खतरनाक क्या है, जो राष्ट्रीय और सामाजिक रूप से चिंता का विषय है। विचारशील लोग महसूस करते हैं कि युवापीढ़ी की जीवनदृष्टि भटकाव के शिकार हैं; वह मौज मस्ती में लिप्त है। शास्त्रीय ज्ञान और परंपरागत मूल्यों के प्रति कोई ललक नहीं है, बच्चे और बूढ़े अपने स्वभाव के विपरीत मौन और भौंचक हैं।

सादा जीवन उच्च विचार भारतीय परंपरागत जीवन–मूल्य रहे हैं। आधुनिक जीवन–मूल्य खाओ–पीओ, मौज उड़ाओ, झूठी शान दिखाओ, ऋण लेकर घी पीओ, होता जा रहा है; हो गया है। परंपरागत जीवन–मूल्यों को जीनेवाले एक लेखक की सादगी देखकर उसके मित्र उदास हो जाते हैं (...और वे उदास हो गये), ऐसी ही विडम्बना!

स्थितियाँ मनुष्यता विरोधी है, बारुदी फसलें उगायी जा रही हैं, भय और आतंक का माहौल है, मनुष्य की संवेदनाएँ सिकुड़ी हैं, लेकिन कवि की ज्ञानात्मक संवेदना मनुष्य की जिजीविषा की पहचान करती है। कवि समाज को यथार्थ का आईना दिखाते हैं, साथ ही आस नहीं छोड़ते। वे मानवेतर प्राणियों की संवेदना से सीख ग्रहण करने का संकेत करते हैं। इस ऊसर समय में अंकुरित होते बीज को देखकर मनुष्य की जिजीविषा के प्रति कवि आश्वस्त हैं कि जीवन बच जाएगा। समाज में काली शक्तियाँ हैं, तो संघर्षरत उजली शक्तियाँ भी हैं। प्रकृति की रचना द्वंद्वात्मक है। सत्–असत् शक्तियाँ सदा संघर्षरत रहती हैं।

स्त्रियों पर लगातार हमले हो रहे हैं। वे घरेलू और बाहरी दोनों तरह की हिंसा के शिकार हैं। 'अस्तित्व–बोध' में सभी–अस्मिता के प्रति संवेदना है। स्त्री के प्रति सोच में सकारात्मक बदलाव आया है, लेकिन पुरुष वर्चस्व वाली मानसिकता अभी खत्म नहीं हुई है। समाज के बहुत बड़े हिस्से में बालिका के जन्म पर खुशी नहीं मनायी जाती। पितृसत्तात्मक सामाजिक–पारिवारिक परिवेशवाले घरों में बालिका को बौना बनाए रखने की कोशिश होती है। कवि की संवेदना लड़की के प्रति उपदेशात्मक हो जाती है। वे उसे प्रतिरोध और संघर्ष के लिए उत्साहित करने में संकोच नहीं करते–''आखिर कब चेतोगी तुम? चेतो, आज ही चेतो... नहीं है तुम्हें सिर्फ रेंड़ी–सा चनकना। तुम्हें तो है लुत्ती बनकर धधकना।''

द्विवेदीजी श्रम–सौंदर्य के प्रशंसक हैं। उनकी काव्य– संवेदना कामकाजी स्त्रियों के प्रति उदार और मुखरित हैं। अपनी संवेदना की व्यंजना के लिए वे उन स्त्रियों को अपनी कविता में प्रत्यय प्रदान करते हैं, जो श्रम करती ही करती है; जैसे घर की कामकाजी गृहिणी, झाड़ू लगानेवाली नौकरानी, चायबगानों में चाय की पत्तियाँ तोड़ती मजूरीन, रसोई सँभालती स्त्री, कार्यालयों में कलम घीसती सहायक स्त्रियाँ आदि। वह पुरुष की जन्मदाता भी है। आधुनिक सभ्यता ने स्त्री को रोबोट में तब्दील कर दिया है। कवि की संवेदना स्त्री को पितृसत्तात्मक रूढ़ियों से मुक्त होने का आह्वान करती है। उनकी संवेदना स्त्री को पुरुष वर्चस्व को चुनौती देने के लिए पारदर्शी शब्दों में ललकारती है–''क्या तुम हो/ सिर्फ सिर, हाथ, पेट व पाँववाली/ मशीनी रोबोट?/ नहीं! नहीं!...।'' किसी के इशारे पर कदमताल करती/ कतई नहीं हो तुम आदेशपाल रोबोट।''

स्त्री के बहाने द्विवेदीजी समाज के रोबोटीकरण की भी आलोचना करते हैं। कविता की अंतर्ध्वनि फैलती है। स्त्री मानवेतर प्राणी नहीं है। पुरुष की तरह वह भी भावनाशील है। वह भी स्वप्नजीवी है। उसे भी अपने आत्मिक विकास का पूरा अवसर मिलना चाहिए। इसलिए कवि का आह्वान है–''अपनी अस्मिता का/ उबारना होगा स्वयं को कीचड़ की सड़ांध से।'' स्त्री के पक्ष यह सशक्त और सार्थक अभिव्यंजना है।

भगवती प्रसाद द्विवेदी की काव्य–संवेदना सांस्कृति थाती, गंगा मैया, गोरैया और बच्चों के प्रति असंदिग्ध और अभिन्न है। बच्चे तो समाज के भविष्य है। उनका जीवन अगर संकट में है तो राष्ट्र का भविष्य संकट में है। गंगा माँ को कैसे भूल सकते हैं? और गोरैया तो प्रतीक है हमारी विनम्रता और सम्पन्नता का। द्विवेदी जी बच्चों को 'धर्मोन्माद' की जहर से बचाना चाहते हैं। वे उस इतिहास और परंपरा का उल्लेख करते हैं, जिसमें 'पहले कतई ऐसे नहीं थे हालात। रग–रग में नहीं था पसरा। धर्मोन्माद का जहरवाद।'' वे गंगा की शोभा का वर्णन करते हुए गंगाजल के प्रदूषित होने पर गहरी चिंता जताते हैं–

''तैरती बहती लाशों पर चील–कौवों की नोच–खसोट
तमाम हलाहल हजमकर नीलकंठ–सा
आत्मसात कर प्रदूषणों का अंबार अविराम
तुम्हारा निर्मल मन जानता है–बस आशीषना।

वे गंगा को 'दलितों–गलितों का उद्धारक' माँ भागीरथी बताते हैं। यह प्रतिपादन माँ गंगा के महत्त्व का विस्तार है। यह एक नई दृष्टि है। गंगा के प्रति कवि की सांस्कृतिक संवेदना और आदर में आधुनिक दृष्टि पारदर्शी है।

कवि भगवती प्रसाद द्विवेदी की काव्य–संवेदना आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के प्रति श्रद्धावन्त होती है। वे आचार्य द्विवेदी की 'परम्परा और आधुनिकता के सम्मिश्रण की प्रतिमूर्ति' और 'बलिया की गँवई' माटी का बालियाटिकपन और काशी की सांस्कृतिक चेतना का अद्भुत समन्वय' मानते हैं। अपनी मातृभाषा के प्रति कवि संवेदना अटूट है। उनकी संवेदना सिर्फ वाचिक नहीं है, बल्कि अपनी रचनात्मक संवेदना का परिचय वे मातृभाषा में

साहित्य का सृजन कर देते हैं।

द्विवेदीजी नवगीत के समर्पित साधक हैं। वे नहीं मानते कि गीत गलदश्रु भावुकता का पर्याय है। वे कहते हैं कि जमीनी हकीकत यह है कि सामाजिक सरोकार, जीवनानुभव और घनीभूत संवेदना से लैस गीत का दायरा न सिर्फ प्रणयानुभूति तक, बल्कि नवगीत, जनगीत, नुक्कड़गीत के रूप में तमाम समकालीन संदर्भों से गहरे संपृक्त है।'' उनके नवगीत समकालीन चुनौतियों से वैचारिक मुठभेड़ करते हैं, उनमें समय की चेतना है, युगबोध है।

वे मानवीय जीवन–मूल्यों के पक्ष में प्रकृति से बिम्ब ग्रहण करते हैं। व्यापार और बाजार के युग में मुनाफा लक्ष्य है। जहाँ मुनाफा मूल्य है, वहाँ उदारता कहाँ बचेगी। कवि इस बाजारू समय में नदियों से उदारता की शिक्षा–दीक्षा–प्रेरणा लेने को कहते हैं। भारतीय वाङ्मय में नदियों की उदारता की पर्याप्त चर्चा है। इस बिम्ब की विरासत का द्विवेदीजी और विस्तार करते हैं। मनुष्य नदी से जल के अतिरिक्त उसकी गतिशीलता और उदारता का भाव ग्रहण कर सकता है। ''जीवन की/ गति है/ नदिया का बहते जाना। निभाया/ जीना–जीना क्या है?(नदी धर्म)। तो 'नदी धर्म' उल्लेखनीय कविता है मूल्य की दृष्टि से। वे 'घर में बाजार', 'तहजीवी तासीर', 'जंग आर–पार', 'उदारीकरण', 'माई की पाती, बापू के नाम', 'ब्याही बिटिया की पाती', 'संजैया', 'भीतर बहती नदी' को अपने नवगीत का विषय बनाते हैं। इससे उनकी काव्य–संवेदना समझी जा सकती है।

भूमंडलीकरण के दौर में आदमी आदमी के प्रति संवेदनहीनता बढ़ी है, अपनों के बीच बेगानापन बढ़ा है, स्वार्थ वर्चस्वशाली हुआ है, घर–परिवार में बाजार घुस आया है। इसका संवेदनशील दृश्यांकन 'घर में बाजार' नवगीत में हुआ है। ऐसे विषय को गीत में ढालना एक चुनौती है। लेकिन द्विवेदीजी गीत की परंपरागत कोमलता और लयात्मकता तथा शिल्प को बचाते हुए अपने समय की बात कह जाते हैं। इन नवगीतों को पढ़ते हुए गतिशील और संवेदनशील पाठक इनके पाठों में प्रतिरोध की अंतर्ध्वनि सुनता है। एक आह्वान साफ अंतर्ध्वनित होता है–''अंतर्मन में/संवेदन का/ सृजन–बीज अँकुराता–चल (तिनका–तिनका)।''

हिन्दी भाषा के प्रति द्विवेदीजी बहुत संवेदनशील हैं। हिन्दी भाषा को वे गंगा–यमुनी संस्कृतियों का लय मानते हैं। नवगीत का शीर्षक 'तहजीवी तासीर' अरबी शब्दों से बना है। वे शुद्धतावादी नहीं है। वे यथार्थ के धरातल पर खड़े हैं। हिन्दी शब्द अरबी–फारसी, संस्कृत, अंग्रेजी और देशज शब्दों के सहमेल से बना है। विराट जनता ने इसे आत्मसात कर लिया है। इनके बगैर हिन्दी शब्दकोश का आयतन एक तिहाई रह जाएगा। हिन्दी भाषा के प्रति सम्मान जताते हुए द्विवेदी जी की पंक्तियाँ ध्यातव्य हैं–''भाषा बहता नीर/हमारी हिन्दी है/ तहजीवी (सभ्यता) तासीर (प्रभाव)/ हमारी हिन्दी है।''... इसमें गंगा–यमुनी संस्कृतियों की लय/ जनमन की आशा/ अभिलाषा का संचय है।''

'जंग आर–पार की' जनगीत उल्लेखनीय है अपनी अन्तर्वस्तु के कारण। यह जनगीत मजदूर किसानों से विनम्र आह्वान है। जनगीत में सुनार शासकवर्ग का प्रतीक है और लुहार आम आदमी का। मेहनतकश लुहार के पास हुनर के साथ ताकत है। सुनार के पास हुनर है ताकत नहीं। छोटी–छोटी काव्यपंक्तियों में संघर्ष चेतना बजती है–

''चौट सौ सुनार की/ एक बस लुहार की।''

''साँस मरी खाली की/ धौंकनी कमाल की/ आग को जला रही। लौह को गला रही।''

''हाथ जगन्नाथ है/ हुनर संग–साथ है।
ख्वाहिशें मचल रहीं/ शक्ल नई ढल रही है।''

और अंतिम पंक्ति का क्या कहना–

''चोट कर लुहार की/ जंग आर पार की।''

'उदारीकरण' जनगीत का शीर्षक निबंधात्मक है, लेकिन उसकी काव्यात्मक व्यंजना का क्या कहना! नवसाम्राज्यवादी शक्तियों के लिए 'बहेलिया' प्रतीक का इस्तेमाल भारतीय जनमानस के अनुकूल है। बहेलिया के पास एक जाल होता है, जिसमें छल और धोखा से पशु–पक्षियों को फाँसता है। उसी तरह विकासशील देश नवसाम्राज्यवादी देशों के उधार और ऋण के जाल में फँसते हैं। इन स्थितियों का चित्रण कवि बहुत कम शब्दों में करते हैं–

''सभी कर्ज ले/ घी पीना/ आसान हुआ है/
तिल–तिल घुट/ मरते जीना/ आसाना हुआ है।''

और इसके आगे–

''बहेलिये ने/ दाने/ बिखराये हैं ऐसे/
भोली–भाली/ चिरई/ नहीं फँसेगी कैसे?''

''भोली–भाली चिरई'' तीसरी दुनिया के देशों की प्रतीक है। उनके जनगीतों में व्यंग्य की व्यंजना खूब धारदार है। वैसे वे कवि के साथ सफल व्यंग्यकार भी है। 'हँसी आपकी' में व्यंग्य की धार हर पंक्ति में है।

'माई की पाती, बापू के नाम' में एक झोपड़ीवाली स्त्री की गरीबी और विरह की मार्मिक दास्तान है, जिसका पति कोलकाता में कमाता है और पत्नी–बेटी गाँव–देहात में रहते हैं। बरसात में उसकी मड़ैया नासूर की तरह टप–टप चूती है और जिसकी रातें रोते बीतती हैं। समाज के हाशिए पर पड़े गरीब परिवार के दुख के प्रति जनगीत में असीम काव्य–संवेदना है। तथाकथित समाजवादी देश की आर्थिक विसंगतियों की व्यंजना भी है इसमें।

स्त्री लोक के प्रति द्विवेदीजी की कविताओं और जनगीतों में खूब संवेदनाएँ हैं, लेकिन 'व्याही बिटिया की पाती' का जख्म अलग है। 'बछिया' और 'राजकुमार' के प्रतीकों में करुणा की धार भी है और व्यंग्य की मार भी।

उनके जनगीत का विषय सरकारी कार्यालय का चपरासी 'संजैया' भी है। पिता का लाड़ला बेटा 'संजय' सरकारी कार्यालय में 'संजैया' हो गया। 'संजय' से 'संजैया' बनने की प्रक्रिया स्वतंत्रता के पश्चात् लोकतांत्रिक भारत में घटित होती है। इस जनगीत के भावबोध पर लंबा निबंध लिखा जा सकता है। संजय उर्फ 'संजैया' कार्यालय के परिवेश में मानसिक गुलाम में ढल जाता है। कार्यालय से घर आने के बाद भी वह 'साहब' की दिनभर की गतिविधियों की चर्चा पत्नी से करता रहता है। उसकी स्वायत्तता कार्यालय में खो गई। उसके अपने सपने मर गये। उसका माइंड सेट ठस्स हो गया। कार्यालय उसके लिए एनिफल फार्म हो गया। जनगीत का भावबोध बहुत ऊँचा और मनोवैज्ञानिक है। द्विवेदीजी के जनगीतों में जो लय है, भाव–संपदा है, काव्य संवेदना है, सब मिलकर उन्हें उल्लेखनीय जनगीतकार बनाते हैं।

उनकी काव्य–भाषा गंगा–यमुनी परंपरा की है। कविता– संग्रह के नाम में 'इज़ाफा' शब्द अरबी भाषा का है। वे 'जिन्दा', 'मुकम्मिल', 'मुखालिक', 'गुफ्तगू', 'नज़र', जुबान', 'जज़्बात', 'अहसासात' आदि अनेक अरबी–फ़ारसी शब्दों का प्रयोग सहजता से करते हैं। उसी सहजता से लोकभाषा भोजपुरी और अंग्रेजी तथा तत्सम (संस्कृत) शब्द का प्रयोग अपनी काव्य–भाषा के लिए करते हैं। कविता में इससे रवानगी आती है। कविता का प्रवाह बाधित नहीं होता। (अभिधा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर–2)

समीक्षा /

तुम भी नहीं : नये अंदाज की तहरीर

धर्मेन्द्र गुप्त
के 3/10 एक माँ शीतला भवन
गायघाट, वाराणसी
मो. 8935065229

अनिरुद्ध सिन्हा हिन्दी ग़ज़ल के सर्वाधिक चर्चित हस्ताक्षरों में से एक हैं। सात ग़ज़ल संग्रह एवं ग़ज़ल आलोचना पर केन्द्रित सात पुस्तकों के माध्यम से हिन्दी ग़ज़ल के कोष को समृद्ध कर उन्होंने समकालीन ग़ज़लकारों के मध्य अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। ग़ज़ल आलोचना पर कार्य करते हुए उन्होंने स्थापित, संघर्षशील एवं नये ग़ज़लकारों पर बड़ी ईमानदारी से लेखनी चलाई है। वहीं ग़ज़ल सृजन में भी उन्होंने अपनी रचनाधर्मिता का ईमानदारी से निर्वाह किया है। कथ्य की गंभीरता, शिल्पगत सावधानी, विषयानुकूल शब्द चयन, अभिव्यक्ति की विशिष्टशैली, भरपूर संप्रेषणीयता आदि विशेषताओं से युक्त उनकी ग़ज़लें पाठकों से बड़ी सहजता से संवाद करती है। भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली से प्रकाशित अपने नवीनतम संग्रह 'तुम भी नहीं' में भी अनिरुद्ध सिन्हा अपने विशिष्ट तेवर के साथ उपस्थित हैं। संग्रह से गुजरते हुए सुखद अनुभव हुआ कि ग़ज़लकार ने अपने कालखंड को पैनी दृष्टि से देखा और महसूस किया है एवं यथार्थ के ठोस धरातल पर खड़े होकर अपनी अनुभूतियों को मोहक अंदाज में अशआर में ढाला है। इस संग्रह में उन्होंने जीवन के विविध आयामों को बड़ी सहजता से प्रस्तुत किया है, चाहे वे राजनीतिक एवं सामाजिक विसंगतियाँ हों, मानवीय संबंधों का यथार्थ हो अथवा समय की क्रूरता हो। यहाँ तक कि कोरोना की विभीषिका पर भी उन्होंने मार्मिक ग़ज़लें कही हैं।

किसी रचनाकार की पहचान तभी निर्मित होती है, जब उसके पास अपना चिंतन अपनी दृष्टि एवं अपनी भाषा शैली हो। इस दृष्टि से अनिरुद्ध सिन्हा एक सफल रचनाकार सिद्ध होते हैं। अपने समकाल को वे अपनी ग़ज़लों के साथ लेकर चलते हैं। समीक्ष्य कृति की पहली ही ग़ज़ल इस बात को सिद्ध करती है। लोकतंत्र के चौथे स्तंभ के वर्तमान यथार्थ को उजागर करता है। इस ग़ज़ल का एक शेर द्रष्टव्य है–

''सारी बेकार की खबरें ही छपा करती है
काम की बात तो अखबार से कट जाती है।''

लोकतंत्र के नाम पर सत्ता प्राप्त करनेवाले कुर्सी पर बैठते ही जनता से किये गये सारे वादे भूल जाते हैं। भोली–भाली जनता ठगी जाती है और ऐसे बहरूपियों के शासन में जीने के लिए विवश हो जाती है। मन मस्तिष्क में बार–बार यही प्रश्न उठता है–कब तलक जीते रहेंगे हम दुखों के दरमियाँ कब कोई काबिल नया सरदार देखा जाएगा (पृ. 10)

गरीब जनता की पीड़ा सत्ताधारी भला कब समझते हैं...
''जिसने भी गरीबी का चेहरा न कभी देखा
समझेगा भला कैसे इन आँखों का भर जाना (पृ. 11)

स्वराज्य प्राप्ति के पश्चात् जिन आँखों ने सुराज के सपने देखे,
वे आज भी प्रतीक्षारत है कि उनके सपने साकार हों...
आप ही कहिए भला कैसे भूला दें हम उन्हें
जो पुराने ख्वाब आँखों के हैं अबतक रूबरू।'' (पृ. 59)

अनिरुद्धजी भलीभाँति जानते हैं कि आज के रहबरों का जनता दुखदर्द से कोई सरोकार नहीं है। ये सत्ता लोलुप जनहित से अधिक निज हित की बातें सोचते हैं। ऐसी दशा में अपनी समस्याओं को समाधान एवं सही अर्थों में जनतांत्रिक मूल्यों की स्थापना के लिए जन–जन को प्रयास करना होगा और यह प्रयास सकारात्मक होना चाहिए...

''खुशी का देखना मौसम जरूर आएगा
अगर हमारे सँभाले सँभल गया सब कुछ।'' (पृ. 78)

वहीं अपने कर्तव्य से विमुख होकर सियासी रोटियाँ सेंकनेवाले सियासतदानों से वह कहता है...

''तुम अहले सियासत हो, हम अहले मोहब्बत हैं, तुम आग लगाते हो, हम आग बुझाते हैं।'' (पृ. 88)

वर्तमान कालखंड का एक तिक्त यथार्थ यह है कि लोग मिथ्याचारियों का ही साथ देते हैं। परिणाम यह होता है कि सत्य बार–बार पराजित होता है। इस वास्तविकता को अनिरुद्ध जी कुछ इस अंदाज में व्यक्त करते हैं–

''सत्य पराजित रोज हुआ करता है जिनसे
साथ उन्हीं के सब हो लेंगे क्या कर लोगे।'' (पृ. 15)

आज जो बाहुबली हैं, अपराधी प्रवृत्ति के हैं, लोग उन्हीं को बड़ा आदमी मानते हैं। उनके आगे नतमस्तक होते हैं। इस कटु यथार्थ पर व्यंग्य द्रष्टव्य है–

''मुझे भी लोग बड़ा आदमी समझने लगे
गुनहगारों में मेरा भी नाम आया है।'' (पृ. 64)

वर्तमान समय में व्यक्ति भीड़ का हिस्सा बनता जा रहा है और भीड़ केवल शोर करती है, ऐसे में कुछ कहना–सुनना कैसे संभव हो–''हर तरफ गूंजती हैं आवाजें
क्या कहा जाए क्या सुना जाए।'' (पृ. 27)

आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सियासत पैठ गई है। साहित्य जगत भी इससे अछूता नहीं है। साहित्यकारों के भी अपने–अपने खेमे बन गये हैं और वे अपने वास्तविक लक्ष्य से भटककर रचनात्मकता को दूषित कर रहे हैं–''अदबी लोगों के ये अपने–अपने खेमे
शुद्ध हवा में विष घोलेंगे क्या कर लोगे।'' (पृ. 15)

वर्तमान युग में बाजारवाद के प्रत्येक क्षेत्र में तेजी से पाँव पसार रहा है। बाजारवाद के प्रभाव में आकर हम अपनी सभ्यता एवं संस्कृति से विमुख हो रहे हैं–

''इस नए विज्ञापनों के दौर में
सभ्यता के शब्द सारे मर गये ।''(पृ. 87)

इस अर्थलोलुप भौतिकवाद युग में विकास की दौड़ हो रही है, किन्तु इस दौड़ में कितनी ही साँसें थम जा रही है। विकास का यह अर्थ तो नहीं कि हम जीवन की आहुतियाँ ले लें। यदि ऐसा होता है तो इसका अर्थ है कि विकास का यह उन्माद एक दिन हमें विनाश के मार्ग पर ले जाएगा–

''हद से बढ़कर है तरक्की का जुनून
और बुझती जिंदगी साँसों में है।''

झुग्गी–झोपड़ी में रहनेवाले, बड़ी कठिनाई से दो वक्त की रोटी का जुगाड़ करनेवाले, सर्वहारा वर्ग के उत्थान के बिना क्या राष्ट्र का विकास संभव है?यह ज्वलन्त प्रश्न है।

सर्वहारा वर्ग को भौतिक एवं प्राकृतिक दोनों प्रकार की आपदाएँ सहन करनी पड़ती हैं–

''सावन है पास और हवा का दबाव भी
दीवार गिर न जाए मेरा घर उदास है।'' (पृ. 40)

ऐसा नहीं कि हम इस संग्रह में विसंगतियों को उजागर करनेवाली एवं व्यवस्था विरोधी ग़ज़लें ही हैं। कई ग़ज़लों में प्रेमपरक अशआर भी हैं, जो दिलकश अंदाज में कहे गये हैं, यथा–

''कहाँ मैं भी रहा वादे पर कायम
उसे कैसे मैं कह दूँ बेवफा है (पृ. 82)
यह जानकर भी तेरे साथ चल रहा हूँ मैं
किसी भी मोड़ पर मुझको तो छोड़ सकता है।'' (पृ. 70)

उपर्युक्त दोनों अशआर में प्रेम का आधुनिक स्वरूप बड़ी सादगी से अभिव्यंजित हुआ है। वर्तमान समय में दोस्ती, भाईचारा आदि शब्दों के अर्थ बदल गये हैं। हम जिसे दोस्त बनाते हैं, जिसके प्रति बंधुत्व का भाव रखते हैं, जिसके प्रति उदारता दर्शाते हैं, वही हमसे विश्वासघात कर बैठता है–

''जिसे किराए पर हमने दिया था रहने को
उसीके कब्जे में अपना मकान है भाई।'' (पृ. 18)

और जब हम कठिनाई में जी रहे होते हैं, हमारा दिल जख्मों में भरा होता है, तो ऐसे में आज के तथाकथित दोस्त हमारे जख्मों पर मरहम लगाने के स्थान पर नमक लगाने की फिराक में रहते हैं।

''नमक लेकर खड़े हैं दोस्त सारे
यह मेरे जख्म की कैसी दवा है।'' (पृ. 83)

वर्तमान युग में मानवीय संबंध खोखले होते जा रहे हैं, रिश्तों में चाशनी कम होती जा रही हैं। हम एक दूसरे के साथ चल तो रहे हैं, लेकिन अजनबी की तरह–

''हैं साथ–साथ ही लेकिन हैं, अजनबी की तरह
हमारा शहर नया है, नई सदी की तरह।'' (पृ. 39)

अनिरुद्ध जी अति संवेदनशील रचनाकार हैं, पिछले दो वर्ष मानव जाति ने कोरोना महामारी के बीच कैसे व्यतीत किये, यह सर्वविदित है इस अत्यन्त मार्मिक विषय पर उनकी लेखनी स्थिर न रह सकी, उसे लिखना ही पड़ा–

''है शोर इतना खामोशियों का
है बोझ इतना अकेलेपन का
हर एक घर का यही है मौसम
जो कुछ इधर है वही उधर है
हथेलियों पर पड़े हैं आँसू
किसे है फुर्सत जो बढ़के देखे
जिधर भी देखो बिछी है लाशें
यह एक मंजर नगर–नगर है।'' (पृ. 42)

प्रयोगधर्मिता आज के समय की माँग है। अनिरुद्ध जी भी प्रयोगधर्मी रचनाकार है समीक्ष्य कृति में उन्होंने अनेक स्थल पर नये प्रयोग किये हैं। यथा–

''धूप के सायबान में चिड़िया
आबो दाने को ढूंढ लेती है।'' (पृ. 68)

उक्त शेर में धूप सायबान सर्वथा नया प्रयोग है और एक नया बिम्ब प्रस्तुत करता है। अनिरुद्ध सिन्हा का मानना है कि ग़ज़लकार को कथ्य और शिल्प दोनों को लेकर समान रूप से गंभीर रहना चाहिए, तथापि कथ्य की गंभीरता एवं सार्थकता बनाए रखने के लिए अत्यधिक आवश्यक होने पर शिल्पगत समझौता किया जा सकता है। चाहे उसकी आलोचना ही क्यों न हो–''जरा सी चूक पर मिसरों की नब्ज क्या टूटी
ग़ज़ल के शेर को यारों ने भी नकार दिया।'' (पृ. 69)

निश्चित रूप से 'तुम भी नहीं' अनिरुद्ध सिन्हा की प्रतिनिधि ग़ज़लों का एक ऐसा मोहक संग्रह है, जिसमें वर्तमान काल खंड के अनेक चित्र उकेरे गये हैं। देश, समाज एवं जनजीवन के यथार्थ की अभिव्यंजना के रूप में यह कृति ग़ज़लप्रेमियों के मन मस्तिष्क एवं दीर्घकालीन प्रभाव छोड़ने में सक्षम है। नये अंदाज की यह पठनीय कृति ग़ज़ल प्रेमियों से मानो अपील कर रही हो–

''एक नये अंदाज की तहरीर हैं हम
आप हमको भी कभी सरकार पढ़िए।'' (पृ. 91)

तुम भी नहीं (ग़ज़ल संग्रह), भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, मूल्य 210 रु.)

लक्ष्य गीत

प्रो. डॉ. शरद नारायण खरे,
प्राचार्य
शासकीय जेएमसी महिला महाविद्यालय,
मंडला (म.प्र.)
मो.–9425484382

असफलता है एक चुनौती, दो–दो वार करो
फैला चारों ओर अँधेरा, पर तुम लक्ष्य करो

साहस लेकर, संग आत्मबल बढ़ना ही होगा
जो भी बाधाएँ राहों में, लड़ना ही होगा
काँटे ही तो फूलों का नित मोल बताते हैं
जो योद्धा हैं वे तूफाँ से नित भिड़ जाते हैं
मन की आशाओं से प्रियवर अब शृंगार करो
फैला चारो ओर अंधेरा, पर तुम लक्ष्य वरो

असफलता से मार्ग सफलता का मिल जाता है
सब कुछ होना इक दिन हमको खुद छल जाता है
असफलता से एक नया सूरज हरसाता है
रेगिस्तानों में मानव तो नीर बहाता है
चीर आज कोहरे को मानव, तुम उजियार करो
फैला चारों ओर अँधेरा, पर तुम लक्ष्य वरो

भारी बोझ लिये देखो तुम, चींटी बढ़ती जाती है
एक गिलहरी हो छोटी पर, ज़िद पर अड़ती जाती है
हार मिलेगी तभी जीत की राहें मिल पायेंगी
और सफलता की मोहक सी बाँहें खिल पायेंगी
अन्तर्मन में प्रबल वेग ले, नित जयकार करो
फैला चारों ओर अँधेरा, पर तुम लक्ष्य वरो।

चिंतन /

साक्षात्कार संवेदनशीलता ही नहीं, चरित्र का भी मूल्यांकन करता है।

सीताराम गुप्ता,
ए.डी.–106–सी, पीतमपुरा
दिल्ली–110034
फोन नं. 09555622323

जब हम किसी से मिलते हैं तो शिष्टाचारवश सबसे पहले हम एक दूसरे का हालचाल पूछते हैं। सामान्य बातचीत हो अथवा किसी की मिजाजपूर्सी के लिए जाना हो, बातचीत में प्रायः प्रश्नों का ही आदान–प्रदान होता है। इस दौरान हम जो प्रश्न पूछते हैं या कर रहे हैं अथवा नहीं, अपितु उनसे हमारी मनोवृत्ति व नीयत का भी पता चल जाता है। किसी के द्वारा पूछे गये प्रश्नों से उसकी मानसिकता ही नहीं, उसमें व्याप्त मानस रोगों का भी पता चल जाता है। इसलिए अनिवार्य है कि प्रश्न पूछते समय हम न केवल सतर्क रहें, अपितु सामान्य शिष्टाचार, व्यवहारकुशलता वे अवसरानुकूलता का भी ध्यान रखें। दुख के वातावरण में आमोद– प्रमोद की बातें करना व किसी मांगलिक अवसर पर पूरी दुनिया के दु:खों की कहानियाँ लेकर बैठ जाना किसी भी प्रकार से उचित नहीं ठहराया जा सकता, लेकिन कुछ लोगों को ऐसा करने में ही आनंद आता है।

वास्तव में किसी का जी दुखानेवाले अथवा किसी को अपमानित करनेवाले प्रश्न पूछनेवाले लोग कतिपय मनोग्रंथियों के शिकार होते हैं। यदि हम दूसरों के प्रति संवेदनशील हैं व उनके दुखदर्द से सचमुच दुखी हैं तो हमें कभी ऐसे नकारात्मक प्रश्न नहीं पूछने चाहिए, जिनको सुनकर या जिनका उत्तर देने में सामनेवाले को कष्ट हो। साथ ही कोई ऐसी टिप्पणी भी नहीं करनी चाहिए, जिससे सामनेवाले की पीड़ा कम होने के बजाय और बढ़ जाए। कई बार कुछ लोग दूसरे लोगों की उपस्थिति में ऐसे प्रश्न पूछ लेते हैं, जिनका जवाब देना कठिन ही नहीं, असंभव होता है। किसी को नीचा दिखाने के उद्देश्य से पूछा गया प्रश्न तो किसी भी दृष्टि से उचित नहीं ठहराया जा सकता। यदि हम ऐसा करते हैं तो हममें सामान्य व्यावहारिक गुणों के साथ–साथ मनुष्यता नाम का तत्त्व भी बिल्कुल नहीं माना जा सकता।

कुछ लोग जायेंगे तो दूसरों की मिजाजपुर्सी के लिए, लेकिन जितनी देर ठहरेंगे, बात करेंगे, सिर्फ अपने और अपने बच्चों के बारे में। अपनी और अपने परिवार के सदस्यों की उपलब्धियों के बारे में। न सामनेवाले को बोलने का मौका ही देंगे और न उसके घर–परिवार व उससे संबंधित किसी बात को महत्त्व देंगे। क्या इस प्रकार के व्यवहार व वार्तालाप द्वारा परस्पर स्वस्थ संबंधों का विकास संभव है?शायद नहीं। हमें चाहिए कि हम न केवल अवसरानुकूल का ध्यान रखें, अपितु जिससे बात करने पहुँचे हैं, उसको ही नहीं, उससे संबंधित हर व्यक्ति व बात को महत्त्व दें। उसके विषय में व उसके परिवार के विषय में पूछें। यदि हम किसी को किसी प्रकार की मदद नहीं कर सकते तो कम से कम उसको अपेक्षित अनुभव करवाने अथवा उसका जी दुखाने के स्थान पर उसके कंधे पर हाथ रखकर आत्मीयता का प्रदर्शन तो कर ही सकते हैं। विषम परिस्थितियों में किसी के सान्त्वना के दो शब्द भी बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं। हमें चाहिए कि हम जो बात भी पूछें, इस तरह से पूछें कि बात पूछने में ही अपनापन झलके।

कई लोग जब भी बात करेंगे, तेरा–मेरा करके ही करेंगे। ज्यादा से ज्यादा शब्द आपका प्रयोग कर लेंगे। पिछले दिनों पुत्र डॉक्टर अमित पूरे एक वर्ष तक कोविड के रोगियों का उपचार करते हुए स्वयं कोविड से संक्रमित होकर गंभीर रूप से बीमार हो गया। उसका हालचाल जानने के लिए प्रायः ही मित्रों व परिचितों के फोन आते थे। इससे बड़ी संतुष्टि मिलती थी कि लोग हमारे साथ खड़े हैं। लोगों ने हर प्रकार से सहायता भी की। लेकिन साथ ही कई लोगों के व्यवहार व उनकी भाषा और पूछने के ढंग से दुख भी कम नहीं होता था। एक सज्जन प्रायः संदेश भेजकर पूछते थे कि आपका लड़का कैसा है?वी आर वरीड अबाउट योर सन। उन्होंने कभी फोन नहीं किया, अपितु मात्र ये औपचारिक संदेश कुछ दिनों के अंतराल पर भेज देते हैं। उनके संदेश की भाषा और संवाद का तरीका क्या प्रदर्शित करते हैं?क्या हममें नाममात्र का भी अपनत्व शेष नहीं है?यदि नहीं है तो मिजाजपुर्सी का नाटक करने की ही क्या जरूरत है?जीवन में बहुत सारी बातें हमें मात्र औपचारिकतावश ही करनी पड़ती है, लेकिन उसका भी एक तरीका होता है। औपचारिकता के भी कुछ नियम होते हैं।

हर व्यक्ति का एक नाम होता है। जब हम किसी का नाम लेकर बात करते हैं, तो उसमें आत्मीयता झलकती है। यही आत्मीयता आगे संबंधों के विकास व सुदृढ़ीकरण में सहायक होती है। तुम्हारा बेटा कौन सी कक्षा में पढ़ता है, ये पूछने के बजाय विकास बेटा कौन सी कक्षा में आ गया है,ये पूछना हर दृष्टि से श्रेयस्कर होगा। कई लोग तो किसी भी सीमा तक जा सकते हैं। एक मित्र को जब बेटे की बीमारी के विषय में पता चला तो फोन किया और सारी जानकारी ली। उसके बाद कहा–''भाई! ये काम खराब हो गया।'' अब बतलाइए, ऐसी बात सुनकर बीमार पुत्र के पिता अथवा उनके परिवार पर क्या गुजरेगी?हम किसी की परेशानी के समय ऐसे नकारात्मक संवाद कैसे बोल सकते हैं?क्या यही है हमारी शिक्षा–दीक्षा?जब उनसे कहा गया कि भाई ऐसा क्यों बोल रहे हो, तो उनका जवाब था कि मेरा ये मतलब नहीं है। ऐसे लोगों से तर्क अथवा सही बातचीत में जीतना भी संभव नहीं होता।

कुछ लोगों को जन्मसिद्ध अधिकार ही होता है, दूसरों की पीड़ा को बढ़ा देना। वे ऐसे अवसरों की तलाश में रहते हैं, जब वे किसी के जले पर नमक छिड़क सकें। ऐसा करके ही उन्हें आत्मिक संतोष मिलता है। एक सज्जन तो कमाल के निकले। जब उन्हें पता चला कि कोविड के कारण पुत्र नहीं रहे, तो संवेदना व्यक्त करने के लिए फोन आया। उन्होंने फोन पर संवेदना व्यक्त करने के स्थान पर सपाट लहजे में जो पहला सवाल पूछा वो था–''कुल कितने लोग चले गये?'' क्या इससे अधिक हृदयहीनता का प्रदर्शन संभव है?क्या इससे अधिक हृदयविदारक प्रश्न भी पूछा जा सकता है?आप किसी के दुख में सम्मिलित होकर उसके घावों पर मरहम लगाते हो या उसके घावों पर नमक छिड़कने का व्यवसाय करते हो?क्या इससे प्रश्न पूछनेवाले के चरित्र का समग्र मूल्यांकन नहीं हो जाता?क्या ऐसे लोगों को मनुष्य की श्रेणी में रखा जा सकता है?दुश्मन के साथ भी कोई सही व्यक्ति ऐसा बुरा व्यवहार नहीं करता।

यदि आपको स्थिति की सही–सही जानकारी नहीं है, तो भी पूछने का एक तरीका होता है। एक शिष्टाचार होता है। पहले तो आप दु:ख प्रकट कीजिए और उसके बाद कहिए कि हम यही कामना करते हैं और घर के अन्य

सभी सदस्य सुरक्षित एवं स्वस्थ रहें। इसके बाद सब स्पष्ट हो जाएगा। जब हम किसी के घर के सदस्यों अथवा बच्चों के बारे में जानना चाहते हैं, तो कैसे पूछना चाहिए?क्या ये पूछना उचित होगा कि आपके कोई बच्चा–वच्चा है या नहीं या ये पूछना कि आपके कितने बच्चे हैं अथवा बच्चे कितने बड़े हो गये हैं?जिनके बच्चे हैं यदि उनसे ये पूछा जाय कि आपके कोई बच्चा–वच्चा है या नहीं तो इस प्रश्न से उन्हें कितनी पीड़ा होगी, अनुमान लगाना कठिन नहीं। यदि किसी बीमार व्यक्ति के घरवालों से ये पूछा जाए कि भाई! कहीं गड़बड़ तो नहीं हो जाएगी, तो ये बात सुनकर उनका क्या हाल होगा?ऐसे अनेक लोग हैं, जो ऐसे ही प्रश्न पूछकर लोगों को पीड़ा पहुँचाते रहते हैं। हमें हर हाल में इस प्रकार के नकारात्मक प्रश्नों से ही नहीं, अपने नकारात्मक रवैये से भी बचना चाहिए।

कई लोग किसी की मृत्यु पर संवेदना प्रकट करने जाएँगे, लेकिन संवेदना प्रकट करने के स्थान पर और सब काम करेंगे, लेकिन संवेदना ही नहीं प्रकट करेंगे या तो मुँह में दही जमाकर बैठे रहेंगे या फिर दुनिया भर की फालतू बातें करने लग जायेंगे। कुछ लोग तो कितना ही दु:खपूर्ण माहौल क्यों न अपनी बेहूदा हरकतों और जुमलेबाजी से बाज नहीं आते। ऐसे में हमारी तटस्थता भी हमारी निर्लज्जता ही होगी। हमें संवेदनशील होना चाहिए और इस संवेदनशीलता का परिचय भी देना चाहिए। यदि किसी के यहाँ मातमपुर्सी के लिए जाएँ तो दुख तो अवश्य ही प्रकट करना चाहिए अन्यथा वहाँ जाने को क्या औचित्य हो सकता है?मातमपुर्सी के लिए जाने पर भी यदि हम उपेक्षा अथवा लापरवाही का भाव प्रदर्शित करते हैं तो हमसे घृणित व्यक्ति हो ही नहीं सकता। कई लोग किसी भी अवसर पर अपनी दुष्टता से बाज नहीं आते। कई लोगों को पता होता है कि बच्चा कम से कम दसवीं या ग्यारहवी में आ चुका है, लेकिन पूछेंगे कि सातवीं में पढ़ते हो या आठवीं में। ऐसे में बच्चा कमतर महसूस कर सकता है अनुमान लगाना कठिन नहीं।

एक युवक जब एम.बी.बी.एस. करके घर लौटा तो उसके एक रिश्तेदार ने पूछा–'भाई! इंजेक्शन तो ठीक से लगाना आ गया ना! किसी को गलत इंजेक्शन लगा दिया तो लेने के देने पड़ जायेंगे। अब डॉक्टर इस बात का क्या जवाब देता, लेकिन पूछनेवाले के मनोभावों और ईर्ष्यालु प्रवृत्ति का वहाँ उपस्थित सभी लोगों को पता चल गया। किसी को इस प्रकार से अपमानित करने अथवा नीचा दिखाने का अधिकार हमें किसने दिया है?यदि कोई ये समझता है कि ऐसा करने से लोग उसकी योग्यता का लोहा मानने लगेंगे या उससे डरने लगेंगे तो ये अत्यन्त भ्रामक धारणा है। ऐसे लोगों से लोग बात करना भी पसंद नहीं करते। जहाँ तक डरने की बात है, लोग ऐसे लोगों से डरने के बजाय उनसे बचने के प्रयास में लगे रहते हैं। यदि सामनेवाला भी कोई उस जैसा ही टकरा गया तो उसे लेने के देने पड़ सकते हैं। इसलिए जरूरी है कि बातचीत अथवा प्रश्न पूछते समय हम स्वयं को शिष्टाचार व व्यावहारिकता की मर्यादा में रखें। अवसरानुकूल बातचीत भी अवश्य करें। किसी के जख़्मों को कुरेदने की बजाय उनपर मरहम लगाने का प्रयास करें।

दोहे :

महाशिवरात्रि

शक्ति और शिव का मिलन, छवि शिवलिंग अनूप
खोजा ब्रह्मा विष्णु ने, मिला न आदि स्वरूप

बारह ज्योतिर्लिंग की, महिमा अपरम्पार
नम: शिवाय मंत्र को,जपिए बारम्बार

आत्म शिवत्व जगाइए, पाओ जग से मुक्ति
तन मन धन निर्मल करो, सहज सरल है युक्ति

शिवोऽहं को जान लें, करिये शिव का ध्यान
पूर्ण करें सद्कामना, कर्म भक्ति सद्ज्ञान

मुझको शिष्य बनाइए, हे शिव दयानिधान
विधिवत् पूजा–पाठ का, लेश न ज्ञात विधान

मेरा शिव करवा रहा, मुझसे सारा कर्म
बिन माँगे सब कुछ मिला, समझ न पाया मर्म

निराकार शिव ज्योति सम, शिवलिंग पुण्य प्रतीक
ज्ञान न ध्यान स्वरूप का, मुझको करो अभीक

गौरीशंकर वैश्य 'विनम्र',
117 आदिलनगर,
विकासनगर, लखनऊ
मो.9956087585

पुण्य महाशिवरात्रि को, जपें त्रयंबक नाम
अवढरदानी हो मुदित, दे देंगे निज धाम

शिव का नेत्र तृतीय है, बौद्धिक नव आयाम
भौतिकता में डूबकर, व्यर्थ कर्म व्यायाम

शिव की करें प्रतीक्षा, नंदी सा हो मग्न
आशिष पाने के लिए, ध्यान न करना भग्न

दिवस महाशिवरात्रि का, देता ज्ञान अमोल
प्रकृति पुरुष के मेल को, देखो आँखें खोल

फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी, है शिवरात्रि सुयोग
शिवपूजा से मिल सके, फल अभीष्ट का योग

नम: शिवाय जाप से, शिव जी रहें प्रसन्न
ज्ञान, बुद्धि, बल, यश मिले, पूर्ण रहे धन–अन्न

शिव से बातें कीजिए, शिव की सुनिए बात
आँख–कान को खोलिए, जागरुक हों तात।

समीक्षा /

भारतीय संस्कृति का उन्नायक उपन्यास : अद्‌भुत संन्यासी

डॉ0 अवधेश कुमार चन्सौलिया,
प्रा0 हिन्दी, दीनदयालनगर,
ग्वालियर (म.प्र.)
09425187203

हमारा देश देवत्व से परिपूर्ण है। समय–समय पर इस पावन धरा पर देवता, महापुरुष, ऋषि–मुनि, संत–महात्मा अवतरित होकर लोकमंगल की स्थापना करते रहते हैं। इन सभी महान आत्माओं के अपने–अपने उद्देश्य होते हैं। उनमें कुछ हैं–धर्म की स्थापना, ज्ञान की वृद्धि, सद्विचारों का प्रचार–प्रसार, ओज और वीरता का भाव संवर्द्धित करना, अत्याचार का विनाश, लोकतंत्र के प्रति लोगों को प्रेरित करना और मानवीय मूल्यों की रक्षा करना। ऐसे चरित्र सोये हुए समाज को जाग्रत कर उन्हें अपने अधिकार एवं कर्तव्यों का सही–सही ज्ञान कराते हैं। पुरानी परंपराओं और रूढ़िवादी विचारधाराओं को जो अप्रासंगिक हो गयी हैं, जो समाज को गर्त में ले जा रही हैं, जो समाज के विकास में बाधक हैं, उनके प्रति लोगों को जागरुक करते हैं। समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, अनाचार, विसंगतियों, हिंसा, पलायन, संत्रास या राजनीतिक अस्थिरता, बर्बरता आदि बुराइयों को दूर कर कल्याण कारी समाज की ओर लोगों का रुझान पैदा करने की कोशिश करते हैं, वे सत्य के महत्त्व पर जोर देते हैं। भार्गव जमदग्नि के पुत्र भगवान परशुराम इन्हीं सब उद्देश्यों की प्रतिपूर्ति के लिए अपना संपूर्ण जीवन होम करते रहते हैं।

भृगुवंशी भगवान परशुराम अपने कठोर तप से कुंदर बने हैं। उनका तप मात्र आत्म मोक्ष के लिए नहीं, वह तो समाज कल्याण और विश्वकल्याण के लिए है। यही कारण है कि जहाँ भी अनीति होती है, प्रजा को कष्ट होता है, असत्य का बोलवाला होता है, उसी ओर वे अपना परशु और धनुषवाण लेकर चल देते हैं। वहाँ जाकर अन्यायी राजा को परास्त कर न्याय की प्रतिष्ठा करते हैं। वे अन्यायी राजा का मानमर्दन करनेवाले कैलास के समान अजेय और कालाग्नि के समान तेजोमय हैं।

ऐसे दुर्लभ चरित्र पर उपन्यास लिखना अत्यन्त दुष्कर कार्य था। पौराणिक चरित्रों पर लिखना वैसे भी बहुत ही चुनौती पूर्ण होता है, क्योंकि लेखक को सदैव यह डर रहता है कि कहीं कोई ऐसी बात न हो जाये, जो विवाद को जन्म दे दे। उसके पास यह भी संकट होता है कि इस चरित्र को समसामयिक संदर्भों से कैसे जोड़ें। यदि कोई बात आज के संदर्भ के विपरीत है तो उसमें कोई फेरबदल कैसे करें, ताकि उस पात्र की मूल भावना को क्षति न पहुँचे और समाज में सामंजस्य भी बना रहे। जैसे भगवान परशुराम के संबंध में लोक में यह प्रचलित है कि वे क्षत्रियों के शत्रु थे, लेकिन लेखक ने इस अवधारणा को खंडित किया है। उन्होंने लिखा है कि उनके शिष्य अकृतव्रण ने कहा–'यह षड्यंत्र है, राजनीति है।'

जो स्वयं माता रेणुका सी श्रेष्ठ क्षत्राणी का पुत्र हो, उसे क्षत्रियविरोधी कहना राजनीतिक धूर्तता है। वे क्षत्रियों के नहीं, उन छत्रधारियों के विरोधी हैं, जो सत्ता के अहंकार में विवेक खो बैठे हैं।'' (पृ. 166) इतना ही नहीं सभा में भगवान परशुराम के बड़े भाई प्रभावसु का कथन है कि ''मेरे भाई ने राज्य विस्तार के लिए तो कभी शस्त्र नहीं उठाये, प्रजा सर्वत्र हमारे सैन्यबल को सेना नहीं मुक्तिवाहिनी मानती है...जामदग्नेय राम ने आतताइयों की जाति नहीं देखी, उनके दुष्कर्म देखे हैं।''

''हमारी माँ क्षत्रिय, हमारी दादी क्षत्रिय, हमारा कर्म भी क्षत्रिय, हमारा मर्म भी क्षत्रिय का।'' (पृ. 166) भगवान परशुराम के अवतार की प्रासंगिकता को सही ठहराते हुए अकृतव्रण सभा में कहते हैं कि ''जब कोई संकट मानवीय क्षमता से बड़ा हो, तब अवतार आते हैं अन्यथा मनुष्य का पौरुष पर्याप्त है।'' (पृ. 167)

आज भी जनमानस में भगवान परशुरामजी के संबंध में गलतफहमी विद्यमान है। राजीव शर्माजी का यह उपन्यास उक्त गलत अवधारणा का निराकरण करता है।

भगवान परशुराम स्वतंत्रता, समानता, लोकतंत्र और मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठापना के पक्षधर हैं। वे हर उस व्यक्ति के साथ हैं, जो दलित हैं, शोषित हैं और हाशिये पर हैं। वे अराजकता, राजाओं की विलासप्रियता, भ्रष्टाचार एवं जनता के शोषण के खिलाफ हैं। उनके इस जनकल्याणकारी स्वरूप को पाठकों के समक्ष लाकर राजीव शर्मा ने उत्कृष्ट कार्य किया है। उन्होंने सही मायने में अपने लेखकीय धर्म का निर्वहन किया है।

भगवान परशुराम संन्यासियों की इस परंपरा से नहीं है, जो पर्वतीय कंदराओं में केवल अपने मोक्ष के लिए समाज से दूर तपस्यारत रहते हैं। वे इस मिथक को तोड़ते हैं। वे तप भी करते हैं और आवश्यकता पड़ने पर कंदराओं से बाहर आकर जन समस्याओं को सुलझाते भी हैं। उनके आश्रमों में शस्त्र और शास्त्र दोनों की शिक्षा दी जाती है। आश्रम के हजारों बटुक अत्याचार के विरुद्ध सदैव तत्पर रहते हैं। इसी तरह की शिक्षा यदि आज के शिक्षालयों में दी जाए तो वह देश कभी भी गुलाम नहीं हो सकता। उपन्यासकार राजीव शर्मा जी ने भगवान परशुराम के व्यक्तित्व की इन विशेषताओं को अपने लेखन के वैशिष्ट्य से बखूबी उभारा है। ऐसा उन्होंने कल्पना का जाल बुनकर नहीं किया, बल्कि इसके लिए उन्होंने वाल्मीकि रामायण, श्रीरामचरितमानस, महाभारत, श्रीविष्णुपुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण आदि पवित्र ग्रंथों का पूरी एकाग्रता से चिंतन–मन तथा मंथन किया है, तब कहीं यह प्रामाणिक नवनीत निकला है। भगवान परशुराम त्रेता और द्वापरकाल के सेतु हैं। इसी बीच उन्होंने लाखों लोगों को शस्त्र तथा शास्त्र की शिक्षा प्रदान कर उन्हें समाज के योग्य बनाया और उनके साथ स्वयं को भी धर्म की रक्षा में समर्पित किया। उनकी अपनी कोई महत्वाकांक्षा नहीं थी। उन्होंने अपना सब कुछ समाज के लिए समर्पित किया। इसके लिए उन्होंने अपना सारा जीवन यात्राओं में बिताया। वे आजीवन यायावर रहे। धन, संपत्ति विहीन होकर केवल लंगोटी में रहे। माता–पिता और गुरु की आज्ञा शिरोधार्य कर सैदव वनवासी जीवन जिया। जो भी विजय में हासिल किया, वहीं छोड़ दिया। गुरु के कहने पर सर्वस्व दान कर दिया और अपने लिए जमीन समुद्र से मांग ली। दानी इतने कि कोई याचक बिना लिये वापस नहीं गया।

ऐसे चरित्र पर सधी हुई कलम चलाकर नीरस विषय को भी रोचक बनाकर पाठकों को साथ–साथ लेकर चलना हर किसी उपन्यासकार के वश की बात नहीं है, लेकिन राजीव शर्मा जी ने अपने सभी उपन्यासों में ऐसा कर दिखाया है। शर्माजी अपने पौराणिक पात्रों के साथ अच्छा तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं। कथा के प्रवाह में कहीं भी गतिरोध उत्पन्न नहीं होता। भाषा पर आपका पूर्ण प्रभुत्व है। पुराणों के अनुरूप भाषा का प्रयोग इन उपन्यासों की विशेषता है। विवरण परक, वर्णनात्मक, चिंतनशील और व्यासशैली के प्रयोग से उपन्यास पठनीय हो गया है। चित्रात्मक शैली का अनूठापन दर्शन है–''खुले प्रेक्षागृह में परशुरामजी के पाँव रखते ही दृश्य बदल गया। उनकी चाल में ही ऐसा गर्जन–तर्जन था कि समूचा प्रेक्षागृह काँप उठा। तलवारें वापस म्यानों में लौट गयीं और बाण तरकश में। जो राजा लोग सिंह की तरह दहाड़ रहे थे, वे बिल्ली की तरह मिमियाने लगे।'' (पृ. 142) यहाँ यदि मिमयाने के स्थान पर म्याऊँ–म्याऊँ शब्द होते तो बेहतर होता.. कुल मिलाकर अद्‌भुत संन्यासी उपन्यास भारतीय संस्कृति और सभ्यता से ओत–प्रोत एक प्रेरक उपन्यास है, इसलिए इसकी उपादेयता बहुत अधिक है। राजीव शर्माजी व्यस्ततम आइएएस होकर भी ऐसे उपन्यासों की सर्जना कर लेना यह आश्चर्यजनक है। (उपन्यास : अद्‌भुत संन्यासी, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, मूल्य 350 रु.)

आलेख /

जयशंकर प्रसाद के नाटकों में नारी

डॉ. अमर सिंह बधान,
प्रोफेसर एमरिट्स, डी.लिट्., चंडीगढ़,
मो. 9876301085

जयशंकर प्रसाद हिन्दी साहित्य के देदीप्यमान नक्षत्र हैं। एक कवि, कथाकार, नाटककार एवं इतिहास वेत्ता के रूप में उनकी ख्याति सर्वव्यापक है। इनके साहित्य में अतीत, वर्तमान और भविष्य काल के सभी संबोधन एकाकार हो जाते हैं। उन्होंने साहित्य के बने–बनाए पूर्वाग्रहों को तोड़कर, साँचों को नकार कर तथा मिथकों को बदलकर एक नये रचना–कर्म का आविष्कार किया। उनकी रचनाओं में नारी हृदय की वास्तविक तस्वीर झलकती है। समय के दबावों के तहत नारी मन में दबी–छिपी आकांक्षाओं और हृदय की उमड़न–घुमड़न ने, किसी ललक ने, किसी तृष्णा या घुटन ने, पूर्ण होने की चाहत ने प्रसाद के नारी मनोविज्ञान को अभिव्यक्ति दी है। निस्संदेह, वे नारी जीवन के कुशल चितेरे हैं।

यह गौर से देखा जाए तो प्रारंभ से ही प्रसाद नारी की कोमल भावनाओं, स्नेहमूलक विश्वासों और गहरी आस्थाओं के परम उपासक रहे हैं। नारी के जिस रूप में कल्पना प्रसाद ने की है, वह निश्चय ही समग्र मानवीय गुणों से सम्पन्न एक ऐसी नारी का चित्र है, जो अपने सभी रूपों में समाज की विधायक शक्ति होने के कारण मनुष्य के लिए पूजनीय और वरेण्य है। अंग्रेजी साहित्यकार ई.एम.फ़ास्टर ने भारतीय नारी से प्रभावित होकर ही कहा था–''भारतीय नारी को देखकर उसके पाँव छूने को मन करता है।'' प्रसाद ने नारी मन को कोमल भावनाओं का मंदिर और उसके उद्‌गारों को समस्त सदाचारों का मूल माना है।

'अजातशत्रु' नाटक में एक स्थान पर वे लिखते हैं–''कठोरता का उदाहरण है पुरुष, कोमलता का विश्लेषण है स्त्री जाति। पुरुष क्रूरता है तो स्त्री करुणा है।'' अतः इस रूप में नारी समाज की नींव और जागतिक सिद्धियों की आधार मानी गई है। यदि प्रसाद के 'अजातशत्रु', 'चन्द्रगुप्त', 'स्कन्दगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी', 'विशाख' आदि नाटकों का गहराई से विश्लेषण किया जाए तो नारी पात्रों की सृष्टि में हृदय का प्राधान्य है, जबकि पुरुष पात्रों के चित्रण में बुद्धि और तर्क प्रमुख हो उठे हैं। इस संदर्भ में 'अजातशत्रु' में सही ही कहा गया है–''तभी तो वे शासन करती हैं, हृदय पर अथवा उन व्यक्तियों पर जिन्होंने शासन किया है समस्त विश्व पर।'' प्रसाद रेखांकित करते हैं कि स्त्री में सेवा और त्याग का इतना प्राबल्य है कि जीवन न तो उनके लिए दूभर बना है और न ही अनास्थामय।

प्रसाद के नाटकों की रोशनी में हमें विविध नारी पात्र दृष्टिगोचर होते हैं। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में मालविका, मौर्य की रानी, 'स्कन्दुगुप्त' में रामा तथा जायमाला, 'विशाख' में तरला और रमणी तथा 'ध्रुवस्वामिनी' में मंदाकिनी ऐसे पात्र हैं, जिन्हें साधारण नारी पात्र की कोटि में रखा जा सकता है। इन नारी पात्रों का न तो नायक और न ही आधिकारिक कथा से कोई संबंध है। नाटक रूपक पर भी इनका कोई स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित नहीं होता है। नाटककार इनके चरित्र एवं व्यक्तित्व के प्रसार एवं महत्व के बारे में कोई दिलचस्पी नहीं लेता है।

यदि नारी सर्जना की दृष्टि से देखें तो चन्द्रगुप्त में अलका, स्कन्दगुप्त में कमला और महादेवी, अजातशत्रु में वासवी आदि उदार एवं उदात्त भावनाओं से ओत–प्रोत ऐसे नारी पात्र हैं, जो समष्टि हित के लिए व्यक्तिगत राग–द्वेष का परित्याग कर देते हैं।'स्कन्दगुप्त' नाटक में कमला को अपने पुत्र भटार्क के कुकृत्यों से बड़ी ग्लानि और क्षोभ है। उसे इस बात का दुःख है कि भटार्क जैसा नीच व्यक्ति उसका पुत्र है और वह भी जीवित है। 'अजातशत्रु' में वासवी पति की इच्छा से राज्य त्याग देती है। अजात को उसने कभी छलना का पुत्र न समझकर अपना समझा है। उसकी दृष्टि में सच्चा सुख और समर्पण में निहित है। अपने इन्हीं उदार विचारों के आधार पर वह बवंडर बनी छलना को न्यायोचित मार्ग पर अग्रसर करती है। निश्चय ही इस प्रकार के नारी पात्रों में हृदय की अपेक्षा बुद्धि का प्राधान्य है। वे हर समय अपने कर्तव्य–अकर्तव्य के प्रति जागरुक हैं तथा कथा विकास में सक्रिय योगदान देते हैं। प्रसाद नारी पात्रों के इंजीनियर हैं और बड़ी कुशलता और तकनीक से इनका निर्माण करते हैं। यही वजह है कि ये पात्र नाटककार की भावनाओं और आदर्शों का दायित्व निर्वाह करते हुए नायक की उद्देश्य–प्राप्ति में भी सहायक होते हैं। यदि इन उदार भावनाओं से मंडित नारी पात्रों को नाटक से पृथक् कर दिया जाए तो नाटक जलहीन संगमरमरी तालाब लगेगा। इस लिहाज से इस श्रेणी के पात्रों का महत्व स्वतः सिद्ध है।

प्रसाद के नाटकों में नारी पात्रों का एक ऐसा वर्ग भी है, जो अपनी सुंदरता की अमीरी से नायक को आकृष्ट करता है और साथ ही अपनी हृदयगत कोमलता से सभी को रसमुग्ध कर देता है। 'स्कन्दगुप्त' नाटक में देवसेना, 'ध्रुवस्वामिनी' में ध्रुवस्वामिनी और कोमा, 'विशाख' में चन्द्रलेखा और 'अजातशत्रु' में वाजिरा आदि इसी प्रकार के सौंदर्यपुंज नारी पात्र हैं। ध्रुवस्वामिनी ने अपनी वैयक्तिक कोमलता से 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक को उत्कर्ष पर पहुँचा दिया है। कोमा और मंदाकिनी दोनों ही इसी नाटक के अन्य कोमल एवं शालीन नारी पात्र हैं। ये पात्र स्वभावगत कोमलता एवं उद्देश्य–प्राप्ति के लिए दृढ़ता से सुसज्जित हैं। इनमें अद्‌भुत सी गति और चकित करनेवाली शक्ति भी देखने को मिलती है।

प्रसाद के 'स्कन्दगुप्त' में छलना और विजया, 'अजातशत्रु' में अनंतदेवी और शक्मिति यौवन की उद्दाम वासना ने प्रेरित और महत्वाकांक्षा को प्रमुखता देनेवाले नारीपात्र हैं। इनके कपोलों पर रक्त की चंचल लालिमा हृदय में अतृप्ति और मस्तिष्क में सभी चीजों को मथने की द्रुतता भरी है। आरंभ में ये सभी नारी पात्र नायक का विरोध करते हैं, लेकिन अंत में जाकर सद्‌बुद्धि जागृत होने पर ये नायक के अनुकूल हो जाते हैं। 'अजातशत्रु' की अनंतदेवी और शक्तिमति प्रारंभ में अपनी महत्वाकांक्षा को अपना अमोघ अस्त्र बनाकर एक विचित्र–सी उथल–पुथल मचा देती हैं। सारा नाटक इनकी दुर्भावनाओं से आक्रान्त हो जाता है। लेकिन राजनीतिक अन्धड़ में थमते ही इन पात्रों की प्रतिहिंसा गायब हो जाती है और इनमें सर्वहित विनम्रता का आधिक्य हो जाता है। इससे नाटक को शक्ति मिलती है।

पात्र सर्जना की दृष्टि से देखें तो प्रसाद ने 'स्कन्दगुप्त' में देवसेना की रचना बड़े मनोयोग से की है। देवसेना एक सफल गायिका है। उसके कंठ से निकले हुए लचीले गीत कथा प्रवाह को आगे बढ़ाने के साथ–साथ वातावरण के निर्माण में भी सहायक सिद्ध हुए हैं। विजया को स्कन्द की ओर बढ़ते हुए देखकर प्रकृति से अनन्य प्रेम करनेवाली प्रेमोन्मत्त देवसेना गीत के स्वरों में बह जाती है–'घन प्रेम तरु तले'। लेकिन उसकी कल्पना वास्तविकता का रूप न ले सकी। वह अपना मोम से भी अधिक कोमल सपनों का संसार न बसा सकी। उसके हृदय में एक मीठी–सी टीस ही रह जाती है। अपने हृदय का बोझ कम करने के लिए उसने संगीत का सहारा लिया। उसके एक गीत में कितनी निराशा और अनवरत खोज व्याप्त है–

''शून्य गगन में ढूँढ़ता जैसे चन्द्र निराश
राका रमणीय किसका यह मधुर प्रकाश।''

परन्तु उसकी करुणा किसी प्रकार कम न हुई और फिर तो उनका सारा जीवन ही एक निमज्जित हो गया। वह अपनी विचार सरिणी को बहलाने को चेष्टा करने लगी–''हृदय की कोमल कल्पना! सो जा, जीवन में जिसकी संभावना नहीं, जिसे द्वार पर आए हुए लौटा दिया था, उसके लिए पुकार मचाना क्या तेरे लिए कोई अच्छी बात है?'' और अंत में अपराजेय भाव से उसने जीवन के भावी सुख, आशा और आकांक्षा सबसे विदा ली–

''आह वेदना मिली बिदाई
मैंने भ्रमवश जीवन संचित
मधुकरियों की भीख लुटाई।''

निस्संदेह, इस गीत के कारण नाटक के अंतिम दृश्य की शोभा गुणात्मक हो गयीं। इस स्थल पर देवसेना का त्यागपूर्ण जीवन अपनी पूरी शक्ति से प्रतिभासित होता है।

यह कहना भी सत्य है कि प्रसाद के नाटकीय गीतों में नारी भावनाओं की अनुभूतियों की अद्भुत प्रधानता है। 'राज्यश्री' और 'विशाख' में सभी नारी पात्र गान एवं संगीत प्रिय जान पड़ते हैं। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में कार्नेलिया, कल्याणी, मालविका और सुवासिनी सभी अधिकांश नारी पात्रों ने गीत गाये हैं। 'स्कन्दगुप्त' की देवसेना और 'अजातशत्रु' की मागंधी ने तो बड़े–बड़े दीर्घाकार के गीत सात–सात बार गाये हैं। अपनी काव्यप्रियता एवं नारी सम्मान के फलस्वरूप ही प्रसाद ने नाटकीय गीतों का सृजन किया है। इन गीतों में देशप्रेम, मानवीयता, प्रकृति स्नेह एवं नारी सशक्तिकरण की व्यंजना सुनाई देती है। भावाभिव्यंजना की सुकुमारता, मानस की गंभीरता के प्रभावहीन प्रसाद के नारी पात्र अपने प्रेम, सौंदर्य, राष्ट्रीयता की भावना तथा परिस्थितियों को व्यक्त किये बिना नहीं रह सकते।

इस वास्तविकता से भी इन्कार नहीं किया जा सकता है कि जयशंकर प्रसाद ने अपनी मौलिक प्रतिभा में उच्चकोटि का नारी पात्र सृजन किया है। आगे चलकर 'सुदर्शन', हरिकृष्ण 'प्रेमी', गोविन्दपल्लव पंत, जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द आदि नाटककारों ने प्रसाद के नारी मनोविज्ञान के प्रेरणाधीन नारी हृदय की गहराइयों को समझते हुए अपने नाटकों में नारी चरित्रों का सृजन किया है। महादेवी वर्मा ने एक जगह लिखा है–''काव्य और प्रेम दोनों नारी हृदय की संपत्ति हैं। नर विजय का भूखा होता है और नारी समर्पण का। पुरुष लूटना चाहता है, नारी लुट जाना।'' नारी समस्त मानवता की साँस है। यदि संपूर्ण विश्व का राज्य भी मिले और नारी न हो तो पुरुष भिक्षुक है। परन्तु अच्छे गुणों वाली नारी भिक्षुक घर में हो, तो वह राजा है। इसी सूक्ष्म दृष्टि से प्रसाद ने अपने नाटकों में सनातनी गुण सम्पन्न नारी पात्रों की उच्च सीमा पर सृष्टि की है। प्रसाद की नारी वायदा नहीं करती, लेकिन देश, जातीयता एवं पुरुष के लिए सब कुछ न्योछावर कर देती है।

ग़ज़ल

दिवाकर पांडेय 'चित्रगुप्त'
जलालपुर, कुरसहा, बहराइच (यू.पी) मो. 7626055373

1.

एकता के मंत्र बासी हो गये
धर्म दंगे नामराशी हो गये

कोट टाई पैंट एसी कार सब
आप कबसे आदिवासी हो गये

पेड़ पर्वत गाँव जंगल लूटकर
लोग लंदन के प्रवासी हो गये

सीट उनकी है नरक में फिक्स यूँ
कह रहे हैं स्वर्गवासी हो गये

वो हँसी सा खिल रहे हर होंठ पर
दोपहर की हम उबासी हो गये

गुरबतों में थे अमावस की तरह
धन हुआ तो पूर्णमासी हो गये

रह गई सारी धरी बाबूगिरी
हो गई शादी खलासी हो गये।

3.

ठोकरों से तिलमिलाया तब अकल आई मुझे
वक्त ने मुझको सिखाया तब अकल आई मुझे

वे बुरा है वो बुरा है रहा था मैं कभी
आईना उसने दिखाया तब अकल आई मुझे

ये जली है वो बुझी है रोज लड़ता माँ से था
रोटियाँ को खुद बनाया तब अकल आई मुझे

कैद होना चाहता था उनके दिल में बैठकर
बंद तोतों को उड़ाया तब अकल आई मुझे

शायरी में चाँद तारे तोड़ता था रोज़ ही
बोझ जब घर का उठाया तब अकल आई मुझे

मैं समझता आ रहा था है ग़ज़ल मुश्किल बहुत
धान जब मैंने लगाया तब अकल आई मुझे

लोग घर को किसलिए जन्नत बताते हैं मियाँ
एक दिन परदेश आया तब अकल आई मुझे।
है नहीं मंतर पता तो हाथ बिल में मत करो
साँप ने जब काट खाया तब अकल आई मुझे

सिर मुड़ाते ही पड़े ओले सुना तो था मगर
मूंड जब अपना मुड़ाया तब अकल आई मुझे

कांगरेसी ही बुरे हैं सुन रहा था हर तरफ
भाजपा को आजमाया तब अकल आई मुझे।

4.

सर्वोपरि का द्वंद्वमचा है नकटों में कनकट्टों में
गंगाजल की होड़ लगे ज्यों गुबरैलों तिलचट्टों में

किसने कूटा है जनता को मिर्च मसालों के जैसे
यु मुद्दा लेकर टीवी पर बहस हुई सिलबट्टों में

चमचम मोतीचूर जिलेबी लुटियन वाले खायेंगे
झोपड़ियाँ खुश हो जायेंगी सूखे लाई गट्टों में

भीड़ बनाई जाएगी उन्मादों की गोली देकर
आजादी बाँटी जायेगी बन्दूकों में कट्टों में

उस झाड़ी में चकबंदी की इज्जत लूटी जाती है
ठाकुर के जो बाँस लगे हैं रमधनिया के पट्टों में

छिलके भूसी बैनर झालर देंगे कुछ तो हमको भी
मेवा मिश्री बँट जाने दो पहले चट्टे–बट्टों में

इन ईंटों से ही चमकेंगी उनके घर की मीनारें
हमने तो बस झोंके जाना है नफ़रत के भट्ठों में।

आलेख/

घुमन्तु जाति देवार और उनका वाचिक साहित्य

श्रीमती तुलसी देवी तिवारी
बिलासपुर, छतीसगढ़
मो.–9907176361

सभ्यता के उषःकाल से ही मनुष्य मूलभूत सुविधाओं की खोज में एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकता रहा है। जहाँ अन्न, जल, पशुओं के लिए चारा प्रचुर हो, वहाँ अपने कुटुम्ब, नाते–रिश्तेदारों के साथ कुछ काल अस्थायी आवास बनाकर वास किया और जैसे ही इनकी कमी प्रतीत हुई, इनका डेरा अन्यत्र चल पड़ा। मानव सभ्यता के विकासक्रम में एक ही स्थान पर स्थायी घर बनाकर रहना अधिक लाभप्रद प्रतीत हुआ। बहुत दिनों तक एक ही स्थान पर रहने से अपने कुनबे, जाति या समुदाय की पहचान बनती है, भविष्य सुरक्षित होता है, क्योंकि पूर्वजों द्वारा अर्जित अचल सम्पत्ति पर वंशजों का अधिकार स्वतः हो जाता है।

आगे चलकर ग्राम, जनपद, कस्बे, नगर, राज्य, राष्ट्र आदि बने, अधिकांश जन स्थायी आवास में रहकर स्थान विशेष के निवासी कहे जाने लगे। परन्तु आज भी जब मानव सभ्यता अपने मध्याह्न काल में है, कुछ जातियाँ ऐसी हैं, तो घुमन्तू जीवन अपनाये हुए हैं। जैसे–बंजारा, अहीर, धनगर, करमभार, गड़रिया, गड्डी, मतली, गुर्जर, नट, देवार आदि।

अन्य घुमन्तू जातियों की तरह देवार भी जीवन जीने के लिए न्यूनतम सुविधाओं की तलाश में थोड़े–थोड़े समय बाद अपना स्थान बदलते रहे हैं। मध्ययुग में राजा भगवान का रूप माना जाता था। राजकवि राजा की वीरता, उदारता का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करते थे, इन्हें रासो या रासक कहा जाता था। देश में लोकतंत्र की स्थापना के साथ राजवंश समाप्त हो गये। तब इन कवियों की रचनाएँ आम आदमी के संसर्ग में आई, इन कवियों को चारण या भाट के नाम से पुकारा जाता था।

चारण कवियों की कविताएँ वाचिक परंपरा में कंठ–दर– कंठ गूँजती गीति, नाट्य में बदलकर लोकसाहित्य में समाहित होती गई। संभवतः इन्हीं चारणों की परंपरा में छतीसगढ़ के देवार भी आते हैं, ये अपने सकल कुटुम्ब सहित जब किसी गाँव के पास डेरा डालते हैं, तब उसे 'देवार डेरा' कहा जाता है। अधिकतर ये खाली पड़े मैदानों में, कभी–कभी गाँव के स्कूल के मैदान में अपना अस्थायी आवास बनाते हैं, जहाँ जल एवं निस्तार की सुविधा होती है।

ये नृत्य–गान के द्वारा अपनी जीविका चलाते हैं। स्त्री–पुरुष दोनों ही इस कला में प्रवीण होते हैं। तरह–तरह के रूप बनाकर भिक्षा माँगते हैं। पुरुष कभी साधु, कभी तांत्रिक, कभी शनिदेव बनकर भीख माँगने निकलते हैं। महिलाएँ सफेद साड़ी पहनकर डोलची में कभी संतोषी माता, कभी काली माता तो कभी शनिदेव की फोटो लेकर भीख माँगने निकलती हैं। कभी छोटे बच्चों को पीठ पर बाँधे शरीर पर नाममात्र का फटा–पुराना कपड़ा पहने बाजार में निकल जाती हैं, लोग शर्मिन्दा होकर इन्हें साड़ी, ब्लाउज आदि देते जाते हैं, जिसे ये पीठ पर बँधी गठरी में रखती जाती हैं। पुरुष बन्दर–भालू नचाकर लोगों का मनोरंजन करते हैं और बदले में कुछ रुपये कमाकर लाते हैं। इनमें से कुछ लोग रात्रि में घरों में चोरियों को अंजाम देते हैं। महिलाएँ देह व्यापार को सहजता से लेती है। साथ ही वे गोदना गोदने का काम भी करती हैं।

ये मांस, मदिरा प्रेमी अनुसूचित जाति के होते हैं। जितना कमाते खर्च करते जाते हैं। बन्दर, भालू, कुत्ते, सूअर इनके परिवार के ही सदस्य होते हैं। अन्य लोग भले ही इन्हें अछूत कहें, इनमें जातीय गर्व किसी से कम नहीं है। ये स्वयं को रतनपुर के प्रसिद्ध पहलवान गोपालराय और गोंड़ क्षत्रिय कुल से संबंधित मानते हैं–

''चिरई म सुन्दर पतरेंगवा, साँप सुन्दर मनिहार
राजा म सुन्दर गोंड़ राजा रे, जात म सुन्दर देवार।''

आवश्यकता पड़ने पर वे इन पंक्तियों को दोहराते हैं। इनके पास एक समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर है, जो वाचिक परंपरा के द्वारा पीढ़ी–दर–पीढ़ी आगे बढ़ती जाती है। कई जगह अतिशयोक्ति का प्रयोग होता है, तो कई जगह इनमें इनके जातीय नियम ध्वनित होकर इनकी सामाजिक व्यवस्था को गतिमान करते हैं। इनमें कई लोककथाएँ, बहुत सारे गीत प्रचलित हैं, जिनमें कहीं–कहीं तारतम्यता का अभाव पाया जाता है। वस्तुतः ये कथाएँ किसी शास्त्र से संबंधित न होकर इनकी काल्पनिक कृति हैं, जिनके जन्मदाता अज्ञात हैं।

देवार स्वयं को भले हीउच्च कुल–गोत्र का मानते हैं, परन्तु छतीसगढ़ में ये अछूत ही माने जाते रहे हैं। इन्हें मंदिर प्रवेश के स्थान पर मंदिर के कलश का दर्शन करने का ही अधिकार रहा है। लोकसंस्कृति के स्रोत वेद, पुराण, रामायण, महाभारत आदि प्राचीन ग्रंथ होते हैं। इनका श्रवण लाभ तो देवारों को मिलता ही नहीं, जहाँ कहीं से कथा का कोई अंश सुन लेते हैं, अपनी कल्पना का रस देकर उसे जीवन्त कर लेते हैं और ये एक दूसरे से कहते–सुनते उनकी संस्कृति का अंग बनती जाती है।

छतीसगढ़ विभिन्न संस्कृतियों का संगम स्थल रहा है। यहाँ एक समय बौद्धधर्म की हीनयान शाखा का विशेष प्रभाव था। इस शाखा के प्रसिद्ध आचार्य नागार्जुन ने यहाँ तप करके अपने चिंतन को लक्ष्य तक पहुँचाया, जिसका प्रभाव आज भी यहाँ लक्षित होता है। यहाँ बसनेवाली सारी जातियाँ टोना, टोटका, मंत्र–तंत्र के प्रभाव में आई। समाज से दूर रहते हुए भी देवार अंततः समाज के ही अंग हैं। इनकी लोकगाथाओं में तंत्र–मंत्र का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। साहित्य समाज का दर्पण होता है, चाहे लिखित हो या वाचिक। आजादी के पहले तक तो स्त्री जीवन बेहद त्रासद था। देवारों में जो परिवार पालन हेतु महिलाओं को अपनी अस्मत का सौदा करना पड़ता था, वह तो अबतक चल रहा है। उसकी पीड़ा साहित्य में ध्वनित होती है। देवारों की अनेक लोक गाथाओं में नारी मर्मान्तक यातनाएँ झेलती हैं, परिवार के अन्य लोग तो जैसे–तैसे पति की भी निष्ठुरता का परिचय देते हैं।

नारी अपने पति की आज्ञा के बिना कोई कार्य करने के अधिकारिणी नहीं है। इन परंपराओं को तोड़ने का प्रयास करती देवार लोककथाओं की नायिकाएँ हृदयद्रावक यातना से गुजरती हैं। इनके उदाहरण हीरा खाम, हीरा कइना, अहिमन कइना आदि लोककथाओं में मिलते हैं।

हीरा खाम, हीरो कइना लोकगाथा में कथा नायिका हीरो अपने पति हीरा से मायके जाने का आग्रह करती हैं। वर्षों हो गये उसे अपने गाँव, घर, टोले–मोहल्ले को देखे, परिजनों से मिले। हीरा उसे उसके मायके लेकर चलता है, तो स्वयं घोड़े पर और हीरा पीछे–पीछे पैदल, कभी तेज चलती, कभी दौड़ती आगे बढ़ती है। गर्मी के दिन थे, ऊपर से सूर्यातप और नीचे तपती भूमि से उसके पैरों में फफोले पड़ जाते हैं।

वह पलाश के पत्तों को अपने पैरों पर बाँधती है। उससे भी राहत नहीं मिलती, तो साड़ी फाड़कर पैरों में बाँधती है।

''एक गोड़ म रानी बइरी, फेर परसा के पान ला रे भाई
लुगरा के अंचरा ला चीर के दूनो गोड़ मा ददोरा बांधथे।''

जब पीड़ा सहनशक्ति से बाहर हो जाती है, तब लाज–लिहाज, मान–अपमान भूलकर अपने पति से घोड़े पर बैठा लेने की प्रार्थना करती हैं–

मोला घोड़ी म चढ़ा ले राजा जी
घर ले निकरे नारी तुरकिन घुमर निकलथे घांड़ी
बीच जंगल म करना भइगे, झुमझुम खाही मांछी
मोरा कोनो नइये बिपत हरइया, मोला घोड़ी म चढ़ा ले राजा जी।

घर की देहरी लाँघने के बाद चूड़ी पहनानेवाली तुरकिन और शरीर

पर गर्मी में निकलनेवाली घमौरियों की ही निंदा नहीं होती, बाकी महिलाओं की मर्यादा भंग हो जाती हैं। मैं तो घर से निकल आई हूँ। यहीं जगल में लगता है मैं मर जाऊँगी, मेरी लाश पर मक्खियाँ झूमेंगी। इस विपत्ति से रक्षा करनेवाला कोई नहीं है। राजा जी घोड़ी पर चढ़ाकर मुझे बचा लो।

देवारों में सामाजिक समरसता : असह्य कष्ट भोगते हुए रोते–कलपते रानी हीरा मायके पहुँचती है, तो सबसे पहले उसपर एक कानी औरत की नजर पड़ती है। वह हीरो रानी और हीरा राजा को पहचान लेती है। सभी महिलाओं को बुला लेती है। उस समय हीरो रानी के मायके के घर में कोई नहीं था। ऐसे में सभी मिलकर गाँव की बेटी और दामाद का भव्य स्वागत करती हैं। बाजा बजानेवाले गांड़ा को बुला लिया जाता है। गाथा में इस प्रकार सुनाया जाता है–

''राजा नारी मन रे भइया, रेंगत पहुँचे सबके नजर म नई दिखैं
कानी चेरिया के आँखी मे रतनजोत के चूरी जगमग बरिगे
अवो–अवो दीदी, मनटोरा, पिलाबाई, हीराबाई
सुकवारो, ए बिटावन अभियान
ओही रेंगना ह हीरो के रेंगना कहिके
सब डउकी मन एदे भिद् भिद् दउड़थें
कोनो गोड़, कोनो मूड़, कोनो रानी के अंचरा ला धरिके रोवथें।''

अत्यन्त मार्मिक दृश्य का सृजन करते हुए यह गाथा जातीय अपनत्व, स्थानीय प्रेम, सामाजिक कर्तव्य की शिक्षा और संस्कार से संस्कारित करती है।

ऐसी ही एक और देवार गाथा है गोपाल राय पंवाड़ा की। उनके जन्म पर पूरी जाति, कुल का यश बढ़ने के प्रति आशान्वित हो जाती है। वे स्वस्थ और बली हैं–

''नौ मर्द के जेथौं अढ़ईया, दसे मर्द के दार, लोहे के चने चबाता है।'' वह नौ मर्द का अढ़ाई गुना अर्थात 23 मर्दों के बराबर भात और दस मर्द के बराबर दाल खाता है। लोहे के चने चबाता है। उसके दाँतों के टकराने के कारण अग्नि स्फुल्लित उत्पन्न होते हैं। एक लोहे का चना उनके डाढ़ में फँस गया था। जैसे महाभारत युद्ध में अर्जुन के रथ पर हनुमानजी बैठे थे, वैसे ही गोपालराय के विभिन्न अंगों पर देवताओं की उपस्थिति का वर्णन होता है–

''जांघ म जांघ देवता, भुला म कुल्हारिया
दूनों नैन म शनिच्चर बइठे हे।''

ये गोपाल राय संभवतः वही है, जिनकी गोड़ स्त्री से जन्मी संतानें देवा कहलायीं। अपने आदि पुरुष का वर्णन वे अतिरंजना के साथ करते हैं। शनि पौराणिक देवता हैं, ये जिसपर नजर फेर दें, वह नष्ट हो जाता है, वैसे ही गोपाल राय हैं, उनके देखते ही शत्रु निःतेज होकर समाप्त हो जाता है। उसकी जाँघों में जाँघ देवता, भुजाओं में कुल्हाड़ी देव स्वयं विराजमान हैं।

आदिकाल में जिस प्रकार देवों की पहचान मिली, उसी अवधारणा का दिग्दर्शन कराती देवारों की कल्पना शक्ति अद्भुत है। जो उपकारी है, वही देव है। उसी का उपकार है, उसी के लिए पूजा है।

राय सिंग पंवाड़ा की कहानी भी कुछ ऐसी ही है, वे तपस्वी और तेजस्वी योद्धा हैं। उनके आगे वीर हो या वीतरागी, दोनों श्रीहीन हो जाते हैं।

''तपी राजा रायसिंग तपी कहाइस
तपी के तप टोरय गरवी के टोरे गुमान।''

जब युद्ध की रणभेरी बजी, जुझारू बाजे पैर काटू, सिर काटू का स्वर उच्चारित करने लगे–

''पहिला पद के बाजा, बाजे किड़ किड़
गोड़ काटा, मूंड काटा, बाजा नरियावत हे।''

अन्य जातियों के समान देवार भी कबिलाई आक्रमणों, डाकुओं या विदेशी आक्रान्ताओं की चपेट में आते रहे होंगे, अपनी अस्मिता की रक्षा हेतु इन्हें युद्ध का सामना करना पड़ता होगा, अतः इनके युद्ध कथाओं का वर्णन प्रचुर मात्रा में मिलता है। युद्ध में सभी की सहभागिता रहती है। जिनका जो परंपरागत कार्य वही उनके देवता हैं अर्थात् कर्म ही पूजा है। जैसे धोबियों में पटकना देव, राउतों के काछन देव, देवारों के दुल्हा देव। इनके पैतृक कार्यों के लिए जिनसे शक्ति मिलती है, ये उसी देवता की पूजा करते हैं। इनसे ये युद्ध में भी सहायता करने की प्रार्थना करते हैं–

''एक छेना आगी धरे
छप्पन कोरी देवता ला सुमरथे
कई कोरी देवता ल समुरथय
बाम्हन मन के ठन–ठन
धोबी के पटकना
देवार मन के दुल्हा देवता
पठान के अल्ला
राउत मन के काछन देवता आय
तेली के लटियारा
मरार के टेड़ा
लोहार के धुकधुकी
कौहा के देवता लौहा लेवत हें
सरई के देवता परई मांगत हें
फरसा के देवता धरसा ल फोरथे।''

सभी देवों की तो ये वंदना करते हैं, जितने इनकी जानकारी में होते हैं। इससे अच्छा सर्वधर्म समभाव का उदाहरण कहाँ मिलेगा? धोबी का काम 'पटक पटक कर कपड़े धोना, तो पटकना ही देवता हुआ; अहीर गाय का पैर बाँधकर दूहते हैं, जिसे काछना भी कहते हैं, उसके देव काछन। लोहार लोग फुंकनी से फूँक–फूँकर आग धधकाते हैं, उनके धुकधुकी देव। मरार पानी टेड़कर सिंचाई करते हैं तो उनके टेड़ा देव। ब्राह्मण लोग ठन–ठन्न सिक्के चढ़वाते हैं तो उनके ठनठना देव। इसी प्रकार उन्होंने वनस्पतियों को भी देव समुदाय में शामिल किया है।

एक देवार लोककथा चन्दा अहीरिन की है। दूध–दही बेचने चंदा दिल्ली शहर जाती है, वहाँ का मिरजा पठान उसकी सुंदरता पर मुग्ध हो उसे कैद कर लेता है। अहीर देवों की सहायता से बड़े–बड़े वीरों को जीतकर चंदा को छुड़ा लाता है। किन्तु पठान के घर में रहने के कारण चंदा को अग्निपरीक्षा देनी पड़ती है। अहीर कहता है मैंने अपने वंश को अपयश से बचाने के लिए इतना भयंकर युद्ध किया, न कि तुम्हारे प्रेम के लिए। यह कथा वाल्मीकि रामायण से प्रेरित जान पड़ती है। वैसे तो वेद पुराणों के वाचन–श्रवण से इन्हें वंचित रखा गया था, अरण्य अथवा ग्राम–शहर से बाहर निवास करने के कारण इन्हें शास्त्र श्रवण का अवसर भी कहाँ मिलता है? फिर भी कहीं से जो कुछ सुना, उसमें अपनी कल्पना का मिश्रण करके एक नीतिपरक शिक्षाप्रद आख्यान तैयार किया। वाल्मीकि रामायण में भी रावण को मारने के बाद राम सीता से कहते हैं कि हे भद्रे! तुम्हारे लिए दसो दिशाएँ खुली हुई हैं, मैं अपने वंश का कलंक धोने के लिए रावण से युद्ध किया, ताकि कोई यह न कह सके कि रघुवंशी अपनी भार्या की रक्षा नहीं कर सकते तो प्रजा की रक्षा क्या करेंगे?

एक लोककथा रमुलिया रानी की भी प्रचलित है। कचहरी जाते समय वीर सिंह दरवाजे पर एक लकीर खींचकर कह जाता है किसी भी कारण से इसे पार मत करना।

दुर्जन राक्षस समुलिया के सौंदर्य का लोभी है, वह अक्सर देख, भिखारी का रूप बनाकर आता है, धर्म का वास्ता देकर रमुलिया रानी को लकीर लांघने के लिए विवश करता है, जब वह शिक्षा देने बाहर निकलती है,

तब उसे जादू से मक्खी बनाकर अपने कंधे पर बैठा लेता है। यह आख्यान पूर्णरूपेण सीताहरण से प्रेरित लगता है।

देवार बड़े ही कल्पनाशील होते हैं, उनकी कल्पना में सीता–लक्ष्मण भी आते हैं। कथा कुछ ऐसी है कि लक्ष्मण जति और सीता के संबंधों पर कीचड़ उछाली जाती है। लक्ष्मण जति की अग्निपरीक्षा देकर देवर–भाभी के प्रेम की पवित्रता स्थापित करता है। इन बातों से दुखी हो लक्ष्मण वन की ओर चल पड़ता है, रास्ते में इन्द्रलोक की रानी कंवलामति मिलती है, वह उसे मेमना बनाकर अपने साथ इन्द्रलोक ले जाती है। यह वही कंवलामति है, जो लक्ष्मण जति को पाने के उद्देश्य से उसके महल में प्रवेश पाने के लिए महल के ठेठवार (राउत) से विवाह कर उसके घर में उसकी पत्नी की तरह रही है। लक्ष्मण के शयनकक्ष तक पहुँचकर उसके चरित्र को संदिग्ध बनाती है, वह शरीर की पवित्रता को गौण और आत्मा की पवित्रता को प्रधान मानती है। अंततः लक्ष्मण को वन में प्राप्त कर लेती। इन्द्रलोक से लक्ष्मण को मुक्त कराने हेतु राम–सीता पाण्डव, कृष्ण, द्रौपदी सभी पहुँचते हैं। देवार साहित्यकारों ने अपनी कल्पना के बल पर त्रेता से द्वापर तक समय को एक कर दिया है। परन्तु किसी इतिहास पुराण से इनका संबंध न होकर देवारों के विशिष्ट आख्यान के रूप में इन्हें देखना ही श्रेयस्कर है। ऐसी ही अनेक कथाएँ इनमें प्रचलित हैं, जो गद्य–पद्य दोनों के मेल से पूर्ण होती हैं।

देवार एक जगह नहीं रहते हैं। इससे इन्हें अपना निवास प्रमाण पत्र, जाति प्रमाण पत्र बनवाने में बहुत कठिनाई आ रही है, इसके लिए अब भी पुरखौती जाति की खोज बीनकर प्रमाण पत्र माँगा जाता है। यूँ तो शासन ने अपना यह आदेश रद्द कर दिया है, परन्तु कार्यालयों में अधिकारी कर्मचारी इन्हें भटकाते हैं।

देवारों में सम्पत्ति का अधिकारी पुरुष होता है, परन्तु विवाह के मामले में दोनों स्वतंत्र होते हैं। एक बार बड़े–बूढ़े शादी तय करके पूरे रस्मोंरिवाज के साथ कर देते हैं। स्त्री–पुरुष अपना जीवनसाथी बदलने में पूर्ण रूप से स्वतंत्र होते हैं। इसमें चूड़ीप्रथा प्रचलित है। नया पति यदि पहले पति के बच्चों को पालने के लिए तैयार न हो तो उसे बच्चों के बाप को अनिवार्य रूप से पालना पड़ता है। परिवार एकाकी होते हैं। वृद्ध माँ–बाप अपने बच्चों में से किसी के पास रहते हैं या अलग रहते हैं। मद्य–मांस सेवन के कारण खर्च अधिक और आमदनी कम रहती है। बच्चे कम उम्र में ही अपने परंपरागत कार्य में लगा दिये जाते हैं। शिक्षा का अभाव है। हमेशा स्थान बदलते रहने के कारण स्थायी सम्पत्ति से वंचित रहते हैं। गरीबी के कारण ही इन्हें आपराधिक कार्यों में संलग्न होना पड़ता है। इनमें कला, साहित्य, खेल आदि की विशेष प्रतिभा होती है। सरकार एवं सभ्य समाज को चाहिए कि इन्हें भी आधुनिक शिक्षा, स्थायी आवास आदि से जोड़ें। इनकी प्रतिभाओं को पहचानकर उन्हें निखारने का प्रयास करें। ताकि ये भी मंत्र–तंत्र, भूत–प्रेत आदि के चक्कर में पड़कर अपनी जान गँवाने से बचें। वैसे भी इन्हें जड़ी–बूटियों का पर्याप्त ज्ञान होता है। ये पुस्तकें भी रखते हैं, जिनमें जड़ी–बूटियों की जानकारी रहती है। कई बार तो जिन बीमारियों को बड़े–बड़े डॉक्टर ठीक नहीं कर पाते, उन्हें ये ठीक कर देते हैं। कई बार रुपये के लोभ में मरीज को ठग भी लेते हैं।

यदि इनका वाचिक साहित्य लिखित रूप में आ जाय, तो भारतीय वाङ्मय में महत्वपूर्ण वृद्धि दर्ज होगी। गरीबी, अशिक्षा, व्यवसाय की अनिश्चितता से जूझती इस जाति के संवर्धन के लेखकों, विद्वानों एवं समाजसेवी संस्थाओं को आगे आना चाहिए।

वर्तमान समय में टी.वी. के जादू ने सिनेमा तक की रंगत फीकी कर दी है। कई सिनेमा हॉल बंद हो गये हैं, ऐसे समय भालू, बंदर आदि का खेल कौन देखता है?इस पर सरकार ने पशु हिंसा निवारण अधिनियम बनाकर जानवरों के खेल दिखाना प्रतिबंधित कर दिया है। इनके नाच–गाने को देखकर भी लोग इतना नहीं दे देते कि इनका गुजर–बसर हो सके। यही देवार युवतियों के देह–व्यापार में फँसाने के कारण हैं।

ये स्वतंत्र भारत के नागरिक हैं। देश के विकास और खुशहाली पर सभी का बराबर हक है। हमें इनका हक इन तक पहुँचाने का प्रयास करना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ–

1. छतीसगढ़ी साहित्य दशा और दिशा–श्रीनंदकिशोर तिवारी
2. साक्षात्कार–देवार जाति के मुखिया का।
3. अन्तरजाल से ली गई जानकारी।
4. देवार महिला माला का साक्षात्कार।

कविता /

कब बसंत आया

गौतम पांडेय
उच्च विद्यालय रामपुरडीह,
दरियापुर, भागलपुर
मो.–9939482396

सरसों के पीले फूल खिले
गेहूँ के स्वर्णिम बाली हँसे
नव मंजर डाली रसाल लगे
पीपल के सिर शिरमौर सजे
जब कोयल तान विषाद हरे
टेसू के फूल कपाल गहे
वासंती मलय सुगंध बहे
नव लता बेल के केलि करे।

जब आम्रकुंज की मादकता
मदहोश हुए गुंजन सारे
सुध बुध न रहा अपने तन का
निज मधुश्रम में जीवन हारे
मधु लूट रहे, मधु लुटा रहे
मधुपान किया मधु पिला रहे
ऐसे मधुकर के लिए सुखद
मधुधारा लेकर आया है

यह वसंत कुछ और नहीं
केवल अनंग की माया है
पाती है जिससे शक्ति धरा
जल, वात सदा पथ बहता है
नित श्रम में अटल, अथक पथ चल
ऋतु की मर्यादा रखता है
वासंती की नूपुर धुन सुन
नव ओज चली रवि की किरणें
अब शीत रहा न ताप रहा
समरूप चल दिवा–निशा
पानी से अपनी भूख मिटा
जो उदर लोग का भरते हैं
मधुकर की भाँति नित्यमेव
श्रमनिरत सदा पथ बढ़ते हैं
ऐसे हलधर के लिए नया
स्पन्दन लेकर आया है
यह वसंत कुछ और नहीं
केवल अनंग की माया है।

समीक्षा /

साक्षात्कार के आईने में: कमल कुमार

दयानन्द जायसवाल
संपादक, सुसंभाव्य

यह पुस्तक लेखिका कमल कुमार नई दिल्ली की हैं, जिसमें विभिन्न वर्गों के लोगों द्वारा लिये गये साक्षात्कार, रचनाकार और उनकी रचनाधर्मिता का विचार–विमर्श प्रस्तुत है, जो कमल कुमार के व्यक्तित्व, उनके कृतित्व और उनकी लेखन–प्रक्रिया का उद्घाटन करता है। साहित्य के क्षेत्र में यह विधा–भेंटवार्ता, बातचीत खासी लोकप्रिय है। यह दो व्यक्तियों के बीच प्रश्न और उत्तर के माध्यम से विचारों का आदान–प्रदान है या किसी एक विशिष्ट व्यक्ति को जानना है। यह पुस्तक एक प्रकार से संपादित संग्रह है, जिसमें समीक्षक विवेक मिश्र, संगीता गुप्ता, राजेश्वर वशिष्ठ, संपादक डॉ. गोरखनाथ तिवारी, रेणु नायर, डॉ. शशि प्रभा, हिन्दी विभागाध्यक्ष विपिन बिहारी, जूडो पिंटो, प्रफुल्ल ठाकुर, संवाददाता–'वागर्थ', नवभारत टाइम्स, इंडिया टूडे, शोध संस्थान के निदेशक–मुक्ता, संपादक : 'नवभारत टाइम्स' श्यामसुन्दर निगम, संपादक : 'मनस्वी' मुरली मनोहर, संपादक : 'सरोकार' विश्वमोहन माथुर, संपादक : 'सद्भावना दर्पण' गिरीश पंकज, लेखिका मीरा सीकरी, दिल्ली विश्वविद्यालय आदि ने समय–समय पर कमल कुमार से जो बातचीत की और जो प्रकाशित भी हुए हैं, ऐसे साक्षात्कारों को एक क्रमबद्ध स्वरूप में सजाया गया है। यह क्रमबद्धता कमल कुमार को हमारे सामने वैचारिक स्तर पर खोलती चली जाती है और पाठक उनकी साहित्यिक प्रतिभा को जानने–समझने का आनंद लेता है।

कमल कुमार एक वरिष्ठ लेखिका हैं, जिन्होंने कविता, कहानी, निबंध, उपन्यास, स्त्री–विमर्श, आलोचना और पत्रकारिता आदि सभी विधाओं में लिखा है। अंतर्राष्ट्रीय विश्वसम्मेलनों में पत्र प्रस्तुत की हैं, देश–विदेश में घूमी है। वर्धा अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय में आवासीय लेखक, प्रो. रही हैं। राष्ट्रीय उच्च अध्ययन संस्थान में रिसर्च स्कॉलर तथा दिल्ली विश्वविद्यालय में मीडिया और स्त्री–विमर्श की प्राध्यापिका आदि रहीं कमल कुमार को कई स्तरों पर विविध गहन अनुभव है। इनके इन साक्षात्कारों से गुजरते हुए पता चलता है कि इनकी दृष्टि का निर्माण बहुत सारे कारकों से मिलकर हुआ है। अनुभव की अनुभूति से कही गई इनकी रचनात्मक प्रक्रिया इनकी विश्वनीयता को बढ़ा देती है और पाठक को महसूस होता है कि जो लिखा गया है, वह कोरी शब्दजाल नहीं है, बल्कि यथार्थ के खुरदरे धरातल पर उपजी कृतिमान है। वैश्वीकरण के इस युग में स्त्री के प्रति इनके विभिन्न विचार आए हैं। सामंती समाज में नियति के द्वार पर खड़ी नारी जितनी आगे बढ़ती है, उतनी ही पीछे लौट आती हैं। वह इस संस्कृति के विरुद्ध नहीं जा पाती। वह आज भी शिक्षा, निजता और स्वाधीनता के मूल प्रश्नों से जूझ रही हैं। उनमें जहाँ एक ओर वैचारिक उथल–पुथल है, वहीं दूसरी ओर औरत होने का भय और त्रास है। उनमें परिवार के प्रति पूर्ण समर्पण, आज्ञाकारी, बिना प्रश्न, बिना जिज्ञासा के सबको खुश रखने में ही खुशी रहने की अनुगामिनी का संस्कार भर दिया गया है। यह वर्जनाएँ स्त्री के अनुभव और विकास में बाधा बनती हैं। पाँवों में पड़ी बेड़ी की तरह उसे अधिक दूर तक नहीं जाने देती। अपनी छवि को सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए उसे प्रमाणित भी करना पड़ता है। स्त्री लेखन भी उसके सूक्ष्म जीवन अनुभवों का लेखन है। इन्होंने समय–समय पर अपनी सीमाओं का अतिक्रमण करने की कोशिश भी की है। जिनमें मन्नु भंडारी का 'महाभोज', मृदुला गर्ग का 'अनित्य', कमल कुमार का 'हैम बर्गर', कृष्णा सोवती का 'जिन्दगीनामा' आदि लेखिकाएँ हैं। जरूरत है स्त्री साहित्य का मूल्यांकन मानवीय और साहित्यिक मानदंडों द्वारा किया जाना चाहिए।

आज कथा–साहित्य में कई पीढ़ियाँ सक्रिय हैं, जितनी पिछली पीढ़ी सक्रिय रही, आज भी उतनी है; परन्तु आज यथार्थ से रू–ब–रू है, विषयों की विविधता है। कमलजी का समसामयिक यथार्थ, बाह्य परिवेश और विविध स्तरों पर भोगे गये जीवन यथार्थ से संचालित होकर इनके लेखन में अभिव्यक्त होता है।

कविता के संदर्भ में इनकी प्रतिक्रिया है कि कविता में दो आधारविन्दु हैं। एक तरफ स्त्री और दूसरा आम आदमी, अभाव ग्रस्त आदमी की स्थिति और उसका दुःख–दर्द। आज कविता की वैचारिकधारा अपनी परिस्थितियों की अनुरूपता में लिखी जाने लगी। कविता हो या कहानी, यह समय बौद्धिकता, तकनीक, उपभोक्तावाद, वैश्विक, पूँजीवाद का समय, जो जीवन की भौतिकवादी व्याख्या करता है। बाजारवाद, वस्तुकरण और विज्ञापन के आक्रमण और देह संस्कृति ने नये मूल्यों और नई तरह की नैतिकता को जीवन संदर्भ में व्याख्यायित किया है। जीवन और समाज में पश्चिम और पूर्व का सम्मिश्रण हो रहा है।

धर्मान्धता के मामले में कहती हैं कि हमारा समाज एक उदारमना समाज है। किसी को किसी दूसरे के धर्मकर्म का पालन करते रहने से विरोध नहीं होता, लेकिन जब एक वर्ग धर्म की सीमाएँ दूसरे वर्ग के धर्म से टकराने लगे या धर्म के नाम पर असामाजिक और नैतिक गतिविधियाँ आश्रय लेने लगे, तो समाज में खलबली मचती है। हर समाज में धर्म, जाति, वर्ग इत्यादि को लेकर कुछ लोग अधिक संवेदनशील और संकीर्ण होते हैं। जिनकी प्रतिक्रिया उग्र और हिंसक होती है, ऐसे में हमें उसके तह में जाकर समाधान ढूँढने होंगे।

जीवन के आदर्श और प्रेरक के परिप्रेक्ष्य में इन्होंने कहा कि आदर्श तो मेरे पिताजी रहे हैं, चूँकि वे एक बड़े विद्वान स्कॉलर तथा अच्छे और निर्भीक लेखक रहे हैं। लिखने की प्रेरणा अज्ञेय, निर्मला वर्मा, भीष्म साहनी, मनोहर श्याम जोशी, जैनेन्द्र, कमलेश्वर, कुँवर नारायण, देवेन्द्र इस्सर आदि रचनाकारों से मिली है। साहित्यिक स्वायत्तता पर इनकी प्रतिक्रिया रही कि साहित्य सर्जक की स्वायत्तता में ही सृजन होता है। रचनाकार की स्वानुभूति और निजता से निर्मित साहित्य अपने आत्मिक आलोक में व्यापक संवेदना से जुड़ जाता है। स्व और समाज के बीच सेतु बनता है। साहित्यकार की स्वायत्तता उसे एक बड़े उत्तरदायित्व से भी बाँधती है और उसकी रचनात्मक परिणति एक व्यापक यथार्थ से जोड़ती है।

इस प्रकार की पुस्तकें, लेखन, पाठन और आलोचना एक सृजनधर्मी प्रक्रिया है, जिसमें आलोचक गंभीर और वस्तुनिष्ठ धर्म में प्रवृत्त होता है। उसका तथ्यपरक मौलिक चिंतन सक्रिय रहता है। कृति के बारे में सुधी पाठक का परिचय मिलता है। वे रचना को पढ़ने के लिए प्रेरित होते हैं। सधन्यवाद!

अमन प्रकाशन, कानपुर, मो.–9839218516, लेखिका–9810093217

समीक्षा /

विश्व के प्रमुख साहित्य चिन्तक

दयानन्द जायसवाल,
संपादक 'सुसंभाव्य'

डॉ. पशुनाथ उपाध्याय, पूर्व प्राचार्य, बंगला कॉलेज, हाथरस, निवासी–शिवपुरी, अलीगढ़ (उ.प्र.) द्वारा सृजित पुस्तक 'विश्व के प्रमुख साहित्य चिन्तक' स्वस्थ साहित्यिक चिंतकों, सामाजिक मूल्यों का वाहक तथा बहुसंख्यक जनता की चेतना को विकसित करने का एक जीवंत दस्तावेज है, जिसका जनमानस पर गहरा प्रभाव पड़ता है और इसके माध्यम से चिंतकों और पाठकों की भावनाओं को उभारा जा सकता है अथवा उन्हें नया मोड़ दिया जा सकता है तथा उनके आसपास की साहित्यिक दुनिया की समझ को प्रखर बनाया जा सकता है। डॉ. उपाध्याय की यह 32वीं कृति हिन्दी के जिज्ञासुओं, मनस्वी साहित्य समीक्षकों एवं अध्ययनशील शोधार्थियों के लिए विश्व के इकतालीस प्रमुख साहित्य–चिंतकों को संक्षिप्त परिचयात्मक विवरण के साथ उनके काव्यशास्त्रीय उपलब्धियों का साहित्यानुशीलन है। संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी तीनों ही स्रोतों से सामग्री का चयन कर उसे समन्वित रूप से प्रस्तुत करने का भरसक प्रयास किया गया है।

कालजयी साहित्य ही विश्वसाहित्य–शास्त्र का अभिन्न अंग होता है। यही कारण है कि गीता में साहित्य–साधना को वाङ्मय तप कहा गया है। सत्यनिष्ठ साहित्यकार अपने को जीवन और जगत् के प्रति खुला छोड़कर तो जीता ही है, परन्तु अभ्यन्तर भी खुला रखता है। शिला और संस्कारों के द्वारा जनित पूर्वाग्रहों की लौह शृंखलाएँ भी टूट जाती हैं तथा उसकी चेतना में बाहर और भीतर की यथार्थों के नये रूप उभरते हैं और वह उनमें संतुलन एवं सामंजस्य स्थापित करता हुआ सत्य के निकट पहुँच जाता है, जिसकी चर्चा सुकरात, विवेकानंद, अरस्तू, महात्मा गाँधी आदि विचारकों ने की है। इनकी शृंखला के साहित्यकार युगीन चेतना से अनुप्राणित है। उनकी संवेदनशीलता और सहिष्णुता आदर्शों और जीवनमूल्यों के प्रति समर्पित रही हैं। साहित्य–सेवा ही उनके जीवन का धर्म था, सत्य था और आदर्श था। उनके चिंतन भाव का स्वरूप उनके विशिष्ट व्यक्तित्व के प्रतीक थे। वे समग्र भाव से चिंतन के रूप में पाठकों के मानस पटल पर विराजमान रहे हैं। उनके गंभीर चिंतन–मनन में समष्टि और व्यष्टि का अपना ही मिश्रित भाव था।

संस्कृति, दर्शन, साहित्य आदि का घनिष्ठ संबंध देश, काल एवं परिस्थिति विशेष से होता है। किसी भी देश विशेष के साहित्य, संस्कृति या दर्शन को प्रभावित करनेवाले तत्त्व और कारक उस देश की भौगोलिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों के तत्त्व ही हैं, जो उन्हें प्रभावित करते हैं। साहित्यशास्त्र के व्यापक दृष्टिकोण में सिद्धांत और रीति के दो अंग माने गये हैं। सिद्धांत के अंतर्गत साहित्य का स्वरूप, साहित्य का प्रयोजन, प्रेरक तत्त्व या कारक, सर्जन प्रक्रिया या सृजनशीलता, साहित्यानुभूति का स्वरूप एवं उसकी प्रक्रिया आदि का तात्त्विक विवेचन आता है, जबकि रीति के अंतर्गत रूपगत भेद, अभिव्यंजना के उपकरण, पद रचना, अलंकार आदि का प्रतिपादन किया जाता है। विश्व वाङ्मय पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होगा कि पाश्चात्य एवं भारतीय साहित्यशास्त्रों में सिद्धांत सूत्रों में बहुत साम्य दिखाई पड़ता है। जीवन में पूर्णता की खोज ही भारतीय जीवनदर्शन का आधार है, जबकि पाश्चात्य में भी सुखमय जीवन–यापन करना मुख्य ध्येय है। भारतीय और पाश्चात्य साहित्य अत्यन्त विकसित और समृद्ध साहित्य है, जिसके समन्वय से विश्व साहित्यशास्त्र का निर्माण सहज–सरल रूप से हो सकता है। भारतीय और पाश्चात्य साहित्यशास्त्र काफी हर तक एक दूसरे के पूरक हो सकते हैं। दोनों के समन्वय से, समीकृत होने से सार्वभौम साहित्यशास्त्र का निर्माण हो सकता है। अरस्तू ने काव्य को प्रकृति का अनुकरण कहा है। विक्टोरियन कवि समीक्षक मैथ्यू आर्नल्ड ने काव्य को जीवन की समीक्षा कहा है। पंडित जगन्नाथ ने रमणीय अर्थ की अभिव्यंजना करनेवाले शब्द–विधान को काव्य कहा है। पाश्चात्य काव्य में शैले, पोप आदि ने भी सौंदर्य के लयात्मक अभिव्यक्ति को काव्य की संज्ञा दी है। इस प्रकार भाववादी और वस्तुवादी दोनों विचारकों के मत जीवन में रसानुभूति करते हैं; आनंद और कल्याणकारी सिद्ध हुए हैं। सार स्वरूप में ये जीवन का व्यापक आधार नैतिकता को ही मानते हैं। आनंद और मनोरंजन को भी परिष्कृत एवं स्वस्थ रूप में ग्रहण करते हैं। इन लोगों का दृष्टिकोण उपयोगितावादी एवं जीवनोपयोगी में आनंदवादी मूल्य है। वैश्विक स्तर पर सम्प्रति सामाजिक परिवर्तन एवं उत्कर्ष के संबंध में अनेक प्रकार की विचारधाराओं, सिद्धांतों एवं साहित्यिक आंदोलनों का क्रमिक विकास देखे जा रहे हैं। इसलिए इनको समझने के लिए साहित्यशास्त्रीय अध्ययन आवश्यक हो जाता है।

लेखक उपाध्यायजी की इस कृति में साहित्यचिंतकों का विवेचन सैद्धांतिक एवं रीति की विविधता के परिप्रेक्ष्य में सात अध्यायों में विस्तारित किया है, जिसके प्रथम अध्याय में विश्वसाहित्य समीक्षा के विविध आयाम का विवेचन है। सर्वप्रथम संस्कृत समीक्षा शास्त्र का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में विवेचन, तत्पश्चात् यूनानी साहित्यशास्त्र का दार्शनिक परिप्रेक्ष्य, रोमीय समीक्षाशास्त्र की चिंतनशील परंपरा तथा अंग्रेजी साहित्यशास्त्र की नव्यशास्त्रीय परंपरा का दिग्दर्शन और उसका मूल्यांकन वर्णित है। द्वितीय अध्याय में विश्व साहित्यशास्त्र के नये मानदंडों में वैश्विक संस्कृति और नव्य परंपरा, समन्वयशील दृष्टिकोण, विश्वमानव की संवेदनात्मक चिंता एवं लोकमंगल का उदात्त तत्त्व आदि कथ्यों का विवेचन विद्यमान है। तृतीय अध्याय में भारतीय आद्याचार्य साहित्य चिंतकों का विवेचन–विश्लेषण काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों के परिप्रेक्ष्य में किया गया है। चतुर्थ अध्याय में हिन्दीतर भाषा साहित्य–चिंतकों की साहित्यिक उपलब्धियों का विवरणात्मक शैली में विवेचन किया गया है, जिसमें उर्दू, बांग्ला, गुजराती, मराठी एवं मलयालम भाषा का प्रतिनिधित्व हुआ है। पंचम अध्याय में हिन्दी भाषा साहित्य–चिंतकों आचार्य शुक्ल, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, आचार्य हजारी प्रसादी द्विवेदी, डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. नगेन्द्र, सुमित्रानंदन 'पंत', सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा एवं मुंशी प्रेमचंद आदि के साहित्यिक मान्यताओं एवं सिद्धांतों को विवरणात्मक शैली में विवेचन प्रस्तुत किया गया है। षष्ठ अध्याय में पाश्चात्य चिंतकों के काव्यशास्त्रीय सिद्धांत का अनुशीलन एवं मूल्यांकन है। सप्तम अध्याय में भारतीय और पाश्चात्य समीक्षाशास्त्र को समन्वित कर तुलनात्मक धरातल पर विवेचन–विश्लेषण किया गया है।

भारतीय साहित्य की तरह पाश्चात्य साहित्यशास्त्र में भी समालोचना के स्वरूप, क्षेत्र, प्रयोग एवं मूल्यांकन आदि पक्षों के संबंध में विभिन्न साहित्य चिंतकों ने अपने युगीन परिस्थिति और मान्यताओं को अनुरूप विशद विवेचन किया है। अंततोगत्वा साहित्य की साधना सदैव आनंदानुभूति कराती रहती है, रसानुभूति का स्रोत रही है, वही प्रकारान्तर से सौंदर्यानुभूति का पर्याय भी सिद्ध हुई है तथा साहित्य की सिद्धि भी आनंददायी, कल्याणकारी सिद्ध हुई है। मानवीय संवेदनात्मक धरातल पर वैश्विक साहित्य– शास्त्र की पवित्रधारा निरंतर प्रवाहमान होकर विश्व को अपने मूल्यों से सिंचित करती रहेगी। वैश्विक साहित्यधारा को अधिष्ठित और प्रतिष्ठित करने के लिए आज संकल्प लेने की आवश्यकता है तभी सृजनशील चैतन्य की प्राप्ति संभव है।

प्रकाशक –जवाहर पुस्तकालय, हिन्दी पुस्तक प्रकाशक एवं वितरक, मथुरा (उ.प्र.)–9897000951, लेखक का संपर्क सूत्र 9897452431

समीक्षा

मचान : एक सामाजिक उपन्यास

कुलदीप शर्मा
ऊना, हिमाचल प्रदेश
7018402984

तेजी से बदरंग होते जा रहे संसार में लोककथाएँ एक अलग ताजा चटख रंग की तरह आती है। इसका रंग वहाँ दिख जाता है, जहाँ यह अपना अस्तित्व किताबों से बचाकर रखे जाते हैं। गाँव की किसी पगडंडी पर या अलाव पर या बड़े बूढ़ों की चौपाल पर या स्त्रियों के जमावड़े में या फिर निपट देहात के तीज त्योहारों पर यह किस्से मुखर रहते हैं। भूमंडलीकरण और उपभोक्तावाद के इस घुड़दौड़ में लोककथाओं का अद्यतन रूप भी खासी हद तक तकनीक की भेंट चढ़ चुका है, जिसके चलते इन किस्सों के आंतरिक स्ट्रक्चर से वह रूमानी भदेसपन या तो कुंठित हो जाता है या फिर सिरे से गायब रहता है...साहित्य में जब लोककथाओं को किस्सों कहानियों या काव्य का विषय बनाया तो हर कवि कथाकार ने इसे अपने ढंग से रचना के ढाँचे में फिट किया। डॉ. धर्मपाल साहिल ने अपने आठवें उपन्यास 'मचान' में चंबा क्षेत्र की प्रेमकथा कुंजू चंचलो को एक छायाग्रह की तरह कथानक की पृष्ठभूमि में रखा है, बल्कि कहना चाहिए कि अपने दो मुख्य पात्रों के नाम उस लोककथा से उठाये हैं। प्रकारान्तर से यह चंबा बल्कि पूरे हिमाचल के जनजीवन पर रची बसी उस प्रेमकथा का पुनर्स्मरण है। यूँ तो कोई समानता या सामंजस्य दोनो में नहीं है, पर उस लोक प्रेमकथा की अनुगूँज पूरे कथानक में महसूस की जा सकती है। 'मंचान' तो आधुनिक जीवन की संश्लिष्टताओं और भावनात्मक पेचीदगियों के साथ अपने पात्रों में अपने समय के प्रश्नों के हल ढूँढ़ता है। इस उपन्यास में डॉ. धर्मपाल साहिल लोककथा जैसी सरलता और उत्कंठा अपनी बेमिसाल किस्सागोई के बल पर अंत तक निभा ले गये हैं। इस उपन्यास में भी कुंजू और चंचलो के बीच यह नैसर्गिक प्रेम ही है, जो इसे मूल कथा से जोड़े रखता है, वरना मचान की कथाभूमि मूलकथा से बिल्कुल अलग है। कथानक, पृष्ठभूमि और जीवन की स्थितियों में डॉ. धर्मपाल साहिल पहले पृष्ठ से ही इस युग की कथा कहते–कहते अचानक स्वयंवर की एक असंभव सी स्थिति का वर्णन करते हैं, तो लगता है कि यह जरूर कोई जबरन गढ़ी गयी घटना होगी। लगता है कि आगे चलकर कल्पना और यथार्थ के बीच की यह खाई और चौड़ी हो जाएगी और इसे पाटना आसान नहीं होगा। पर पाठक के तौर पर कह सकता हूँ कि हम जल्दी ही गलत साबित हो जाते हैं और कहानी अपने विकास क्रम में अधिक से अधिक कठोर यथार्थ के धरातल पर बढ़ने लगती है। कहना न होगा कि डॉ. धर्मपाल साहिल अपने इस उपन्यास में विलासक एक मास्टर किस्सागो के रूप में सामने आए हैं। हर पल यह जिज्ञासा बनी रहती है कि आगे क्या हुआ। पथ के मन में इस तरह की जिज्ञासा पैदा करना और फिर उसे अंत तक बनाए रखना, इधर आ रहे उपन्यासों में बहुत कम देखने को मिलता है। स्वयंवर दरअसल चंचलो के पहलवान पिता महावीर की अपनी युवा हो रही पुत्री को लेकर स्वाभाविक चिंताओं का नतीजा है। स्वयंवर की बात सुनकर हरिपुर गाँव में हर साल आयोजित होनेवाली छिंज में युवाओं में एक तरह की होड़ लग जाती है, सभी युवा और अविवाहित पहलवान चंचलो को पाने के लिए छिंज में अपना–अपना भाग्य आजमाते हैं। इसी गाँव के दो युवा पहलवान दिलावर और जगदीश जो कई मरतबा पहले भी इस अखाड़े में बड़े–बड़े कुश्ती मुकाबले जीत चुके हैं, पर इस बार वे स्वयंवर में हैं चंचलो को पाने के लिए। दोनों कई नामी पहलवानों को हराकर इस दंगल के फाइनल में भिड़ते हैं और दिलावर विजेता होकर चंचलो जैसी रूपसी को जीवन–साथी के रूप में पा जाता है। जैसे–जैसे कहानी आगे बढ़ती है, स्वयंवर जैसी प्रथा का अटपटापन जेहन से निकल जाता है। उलटे यह बिल्कुल स्वाभाविक लगता है कि चंचलो छिंज की माली जीतनेवाले किसी अविवाहित युवा पहलवान के गले में वरमाला डाले। अटपटापन सिर्फ इसलिए कि यह सब उस क्षेत्र में होता है, जहाँ वर–वधू की जन्मकुंडली मिलाकर रिश्ते तय किये जाते हैं। शरीर सौष्ठव से ज्यादा लड़के की आर्थिक स्थिति देखी जाती है। वरपक्ष का खानदान, ऊँच– नीच और उनके चारित्रिक पहलू देखे जाते हैं। वहाँ चंचलो के पिता महावीर जो खुद एक नामी पहलवान रह चुके हैं, यह घोषणा करते हैं कि उनकी रूपसी पुत्री इस छिंज यानी दंगल का फाइनल जीतनेवाले पहलवान के गले में वरमाला डालकर उससे शादी रचाएगी। दिलावर जहाँ गाँव का सीधा–सादा और मेहनती युवा है, वहीं जगदीश चालाक, लम्पट और महत्वाकांक्षी है। पुलिस की नौकरी करते–करते उसे शराब जैसी लत भी लग गयी है और वह गाँव के आवारा, नशेड़ी, दिशाहीन युवकों का अगुआ भी बन बैठा है। दोनों कभी उस फाइनल के बाद दंगल में तो नहीं भिड़े, पर इनके बीच द्वंद्वका एक महीन सा वितान बनता चला जाता है। यह द्वंद्वचंचलो को लेकर तो है ही, इसका एक कारण यह भी है, जगदीश स्वयं को दिलावर के मुकाबले अधिक योग्य और सम्पन्न मानता है। जगदीश की नौकरी पुलिस में होने के कारण उसका गाँव के सीधे–सादे लोगों पर जो रुआब है, उससे वह गाँव का एक प्रभावशाली व्यक्ति बन बैठा है। उसके स्वभाव में हेकड़ी है और कहीं भी, कैसे भी अपनी बात मनवा लेने का दंभ है। चंचलो पर उसकी कुदृष्टि उसी दिन से है, जिस दिन वह छिंज का फाइनल हार गया था। दिलावर की उस अंतिम पटकनी से जगदीश खुद ही नहीं हारा, चंचलो को भी उसने खो दिया था। दिलावर चंचलो के साथ अपनी गृहस्थी में मशरुफ रहता है। उसकी जिंदगी चंचलो, खेत और मवेशियों तक सीमित हो जाती है। उसकी सीमित इच्छाएँ और थोड़े से सपने है और वह चंचलो को अपनी जीवन में पाकर खुश है, संतुष्ट है। दिलावर अपनी खेतीबाड़ी की जंगली जानवरों से बचाने के लिए खेत के बीचोबीच एक मचान बनाता है। मचान का प्रचलित अर्थ है–एक शिकारी का स्ट्रेटेजिक बैठने का स्थान, जहाँ से वह अपने शिकार की टोह लेता है और उसपर निशाना साधता है। इस उपन्यास में मचान का प्रयोग बहुअर्थी है। दिलावर के लिए मचान महज जंगली जानवरों से फसल की रक्षा के लिए व स्वयं सुरक्षित रहने का साधन है, जिसे हिमाचल के इस भूभाग में 'तन्न' कहा जाता है। जगदीश के लिए यह मचान संभवतः एक शिकारी का मचान है। अचानक इसी तन्न या मचान पर रात को दिलावर की रहस्यमयी स्थितियों में मौत हो जाती है। नतीजतन चंचलो अपने दो बच्चों संग इस दुनिया में नितांत अकेली पड़ जाती है, तभी उसे यह भी एहसास होता है कि वह अर्धशिक्षित या लगभग अशिक्षित है। अशिक्षा का यह दंश उसे भीतर तक सालता है। मास्टर कुंज कुमार, जो छिंज में जो मंच संचालन का काम सँभालता था, हरिपुर गाँव के प्राइमरी स्कूल में अध्यापक है। चंचलो के बच्चे इसी स्कूल में शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं और चंचलो अपने बच्चों की पढ़ाई और फीस को लेकर चिंतित रहती है और फिर एक दिन वह खुद अपने दोनों बच्चों के साथ स्कूल जाती है और मास्टर कुंज कुमार से उसके व्यक्तित्व, उसकी उदारता से और उसकी भद्रता से बहुत प्रभावित होती है। दिलावर की मौत के बाद कहानी में जो ट्विस्ट है, वह यह कि युवा चंचलो हर कदम पर जगदीश की नजरों में खटकने लगती है और वह उसे किसी भी तरह पा लेने के लिए लालायित है। अपने मंसूबों को पूरा करने के लिए वह हर तरह से हथकंडे अपनाता है। उसके खेतों की बिजाई–निराई का लालच देता है, पर चंचलो उसके लालची स्वभाव से परिचित है। वह उसे दो टूक जवाब देकर हड़का देती है। दिलावर की मौत के बाद चंचलो के पिता महावीर और घर में पाली गयी एकमात्र गाय की मौत चंचलो को और ज्यादा तोड़ देती है। मास्टर कुंज कुमार के साथ चंचलो की नजदीकियाँ जगदीश को बुरी तरह आहत करती है और वह गाँव के आवारा नशे के लालची युवकों के साथ मिलकर कुंज कुमार के

खिलाफ एक साजिश रचता है। यह साजिश ऐसी है कि मास्टर कुंज कुमार के जीवन में एक बवंडर ला देती है। कुंज कुमार अचानक एक समझदार और लोकप्रिय अध्यापक, भगोड़ा बनकर दुनिया के सामने आता है। कुंज कुमार पर अचानक एक आरोप लगता है कि उसने स्कूल में पढ़नेवाली एक छोटी दलित बच्ची के साथ बलात्कार करने का प्रयास किया और वह स्कूल में इसी कारण बेहोश हो गयी। यह एक सोचे–समझे षड्यंत्र का हिस्सा था, जिसकी इबारत जगदीश ने लिखी थी। इस शिकायत पत्र पर तथाकथित पीड़ित बच्ची के अनपढ़ पिता का अंगूठा भी लगा है और इस शिकायत की पुष्टि स्थानीय एम. एल.ए. करता है। पूरा प्रिंट मीडिया और टी.वी चैनल इसमें अपनी खलनायकी भूमिका निभाते हैं और टीआरपी बढ़ाने के चक्कर में यह मुद्दा इस तरह उछाला जाता है कि हर कहीं लोग इसके खिलाफ प्रदर्शन करते हैं। वे सब लोग जो मास्टर कुंज कुमार के चरित्र के विषय में जानते हैं, सकते में आ जाते हैं। केवल एक रौशनी है जो खुलेआम कुंजकुमार के पक्ष में है और उसकी छाया में चलनेवाली चंचलो भी यह जानती है कि मास्टर कुंजकुमार निर्दोष है। वह जानती है कि जगदीश ने ही उसे फँसाया है। पर वह कुछ भी कर पाने की स्थिति में नहीं है। यह सारा प्रकरण उस 'डेडली नेक्सस' का हिस्सा है, जो पुलिस, अपराधी, राजनेता और मीडिया के बीच बहुत फल–फूल रहा है और आम आदमी के पास जिसका कोई तोड़ नहीं है। मास्टर कुंज कुमार जगदीश द्वारा रची गयी इस साजिश में फँसकर इस कदर असहाय हो जाता है कि गिरफ्तारी से बचने के लिए वह रातोंरात भूमिगत हो जाता है। इज्जतदार आदमी का इस तरह भगोड़ा हो जाना पाठक को भी आक्रान्त कर देता है। हमारा समाज आज जिस अनैतिकता की चपेट में है, वह इस पूरे प्रकरण में अपनी पूरी भयावहता के साथ उभरकर आई है। इसी प्रकरण में रौशनी की भूमिका भी एक ताजादम और रोशनख्याल व्यक्तित्व के रूप में उभरक सामने आई है। वह आर्थिक और भावनात्मक रूप से आजाद है और निजी जिंदगी के झटकों ने उसे निर्भीक बना दिया है, वह कुंज कुमार की लेखक के तौर पर प्रशंसक है और एक गहरे स्तर पर उनकी मित्रता एक दूसरे का संबल है। वह कुंज कुमार पर अचानक आई आपदा से बड़ी सूझबूझ और साहस के साथ जूझती है। रौशनी से चंचलो का मिलना और उनकी फर्म में नौकरी मास्टर कुंज कुमार की वजह से ही संभव हुई थी। इसी बीच दिलावर की मौत की फाइल को दोबारा से खुलवाना, उसकी पोस्टमार्टम रिपोर्ट निकलवाना, जो पुलिस ने जगदीश के दखल के चलते छुपा ली थी, पुलिस पर दवाब बनाकर उसे सच्चाई उगलवाना और इसमें सीधे–सीधे दिलावर की भूमिका का जाहिर होना–यह सब काम रौशनी और मास्टर कुंज कुमार इस तरह करते हैं कि धीरे–धीरे यह भी साफ हो जाता है कि दिलावर की हत्या हुई थी और उसमें जगदीश ने थाने में बंद दो कैदियों का इस्तेमाल किया था। एक अन्य स्त्री पात्र सुरंजना जो जगदीश की रखैल है, रौशनी से मुलाकात के बाद अपने जीवन में बदलाव ले आती है और रौशनी के कहने पर दिलावर हत्याकांड में सच बोलने को तैयार हो जाती है। इस तरह धीरे–धीरे सारी घटनाओं पर से रौशनी और मास्टर कुंज कुमार के प्रयासों से धुंध छँट जाती है। उपन्यास का यह भाग एक सस्पेंश थ्रिलर की तरह चलता है और पाठक उन सारी घटनाओं से भावनात्मक जुड़ाव महसूस करता है। घटनाओं में एक से अधिक बार नाटकीयता आ गयी है, पर वह कहानी के प्रवाह में बखूबी खप जाता है। कुछ ओपरा या बनावटी नहीं लगता। अंत में जब रहस्य के बादल एक–एक कर छँटने लगते हैं तो मास्टर कुंज कुमार भी सुर्खरू होकर दोबारा उसी स्कूल में ज्वाइनिंग देता है, जहाँ से उसे निलंबित किया गया था। इस बीच बहुत सारे पात्र जो इस मुहिम में रौशनी का साथ देते हैं, वे समाज के गुडगुडी लोग हैं। उपन्यास की कथावस्तु में उनका योगदान यह है कि वे रौशनी के आग्रह पर और स्वेच्छा से भी उसकी मदद के लिए हमेशा तत्पर रहते हैं। कहानी अंततः एक सुखान्त की ओर बढ़ती है। पर इस सबमें लोक कथा के दो पात्र कुंजू और चंचलो बहुत पहले से प्रेम और समर्पण की आधी अधूरी अभिव्यक्ति में एक दूसरे के लिए न्योछावर हो जाने की मनःस्थिति में आ चुके होते हैं। फिर एक आश्रम में वे सारी वर्जनाएँ तोड़कर शारीरिक स्तर पर अपने इस प्यार पर मुहर लगाते हैं। कुंजू चंचलो बिना शादी किये एक हो जाते हैं। लगभग पौने तीन सौ पृष्ठों के इस उपन्यास में लेखक ने जिस भौगोलिक अंचल को अपनी कथावस्तु के लिए चुना है, वह हिमालच–पंजाब का सीमांत क्षेत्र है। वहाँ के ग्रामीण जीवन का साहिल को व्यक्तिगत अनुभव है। वे कई वर्ष तक वहाँ अध्यापन कार्य करते रहे हैं। जाहिर है कि मास्टर कुंज कुमार का किरदार बहुत हद तक लेखक का अपना भोगा हुआ यथार्थ भी है। निजी अनुभवों से निःसृत किसी भी रचना प्रक्रिया में उस क्षेत्र विशेष की जीवन स्थितियों का प्रामाणिक वर्णन मिलना स्वाभाविक है। यही कारण है कि जब डॉ. धर्मपाल साहिल हरिपुर गाँव के मेलों, त्योहारों, उत्सवों या परंपराओं पर कलम चलाते हैं तो आपके आसपास उस हवा का स्वाद तैरने लगता है। यह लेखक के लिए रचनात्मक तुष्टि का सबब हो सकता है। साहिल सात उपन्यास और कई अन्य पुस्तकें लिखने के बाद मचान में अपना सारा जमा अनुभवन उड़ेल देते हैं और पाठक के हाथ में एक ऐसी कृति देते हैं, जिसमें पाठक सिर्फ पाठक रह जाता है, प्रश्नकर्ता नहीं बन पाता। हमारे गाँवों में निर्विवाद रूप से जातीय वर्गीकरण और जातीय संघर्ष छोटी–छोटी घटनाओं में मौजूद रहता है, वैसा संघर्ष मचान में भी है, पर वह कहानी के दवाब में अंडरकरंट की तरह विद्यमान है कहानी के मुख्य खाँचे में नहीं आता। किसी भी कहानी या उसके पात्रों को लेकर लेखक के निजी मन्तव्य रहते हैं, जिनसे एक संवेदनात्मक लगाव बना रहता है, ऐसे में किसी वैचारिक दृष्टिकोण को निभाने की गुंजाईश कम रहती है। डॉ. धर्मपाल साहिल का यह उपन्यास किस्सगोई की एक बेहतरीन मिसाल है। रौशनी और सुरंजन के माध्यम से स्त्री पुरुष संबंधों की दो नितांत अलग तरह की व्याख्याएँ यहाँ मिलती हैं। एक पति द्वारा उपेक्षित और त्यक्त किन्तु हर अर्थ में अपने समय से मुठभेड़ करती और जीतती हुई, दूसरी प्रेमी के लिए पति को छोड़ देनेवाली और बाद में उसकी रखैल बन जाने का अभिशप्त। इतना ही नहीं वह प्रेमी से केवल शारीरिक भूख की तुष्टि का प्रयोजन तलाशती उसकी अपराधिक गतिविधियों में भी बिना कुछ सोचे शामिल हो जाती है। एक आत्मसम्मान और सूझबूझ से जीवन की चुनौतियों से जूझती और दूसरी बिना रंचमात्र स्वाभिमान के पतन के रास्ते पर लगातार फिसलती हुई। जैसे ही जगदीश की पत्नी और सुरंजनी रौशनी के उजाले व्यक्तित्व के संपर्क में आती है, वे जगदीश के खिलाफ गवाही देने को तैयार हो जाती है, पर अपनी बाजी पलटते देखकर जगदीश आत्महत्या कर लेता है और इसके साथ ही दिलावर की हत्या और दूसरे मामलों का भी पटाक्षेप हो जाता है। उपन्यास में दूसरे पात्र भी हैं। मसलन रौशनी के फर्म के मालिक मित्तल जी, रिटायर्ड जज जो रौशनी की मदद करते हैं, पर सबसे रहस्यमय पात्र हैं बकरीवाले बाबा! दिलावर की मौत के बाद वे गाँव छोड़कर चले जाते हैं और उसके बाद उनका उपन्यास में कोई वर्णन नहीं है। मास्टर कुंज कुमार का चंचलो के लिए प्रेम उद्यत भावना जैसे लवरेज और कहीं भी ऐसा नहीं लगता कि कुंज कुमार चंचलो के कुंजू नहीं हैं।

तमाम संघर्षों और पीड़ाओं से निकलकर वे एक सुखद अंत की ओर लौटते हैं। मास्टर कुंज कुमार पता नहीं क्यूँ प्रेम की परिणति विवाह में नहीं चाहते और कई तरह के तर्क देकर वे चंचलो को इस बात के लिए राजी कर लेते हैं कि उनका संबंध जैसा है, वह शादी के घेरे में आ जाने के बाद सीमित हो जाएगा। कुंजू और चंचलो के लिए–'दुख भरे दिन बीते रे भईया, अब सुख आयो रे' वाली स्थिति है। जैसे उनके दिन फिरे, वैसे सबके फिरे।

आलेख /

वासुदेव बलवन्त फड़के

डॉ. ऊषा निगम
कानपुर–208004
मो0–9792733777

1857 का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम समाप्त हो चुका था। देश में तूफान के बाद का सन्नाटा था। विदेशी साम्राज्य के भयंकर दमनचक्र ने चारो ओर दहशत फैला दी थी, लेकिन यह चुप्पी, यह सन्नाटा, यह निःस्तब्धता अधिक समय तक नहीं ठहरी, क्योंकि कंपनी राज्य के दमन की यादें भारतीय मानस पर अमिट छाप छोड़ गई थी। जनमानस में विदेशी शासन के विरुद्ध समायी घृणा और गहरे आक्रोश में कोई कमी नहीं आयी थी। इसका प्रमाण स्वयं वासुदेव बलवन्त फड़के का जीवन था।

1857 की क्रान्ति के केवल 22 वर्षों के बाद महाराष्ट्र की धरती पर हलचल मचा देनेवाले इस युवक का प्रारंभिक जीवन बहुत साधारण था। 4 नवम्बर, 1845 में कोलाबा जिले के शिरढोण गाँव में जन्मे वासुदेव ने साधारण शिक्षा प्राप्त की थी। आरंभ में छोटी–मोटी नौकरियाँ करने के उपरान्त लगभग 15 वर्षों तक फाइनेंस कमिसरिएट (मिलिट्री एकांउट्स) में रहकर ब्रिटिश राज्य की सेवा की। वासुदेव का यह रूप उनके बाद के विद्रोही स्वरूप से नितांत भिन्न लगता है, लेकिन यही वह समय था, जब उनके हृदय में ब्रिटिश राज्य के विरुद्ध भावनाओं ने जन्म लिया।

फड़के के संबंध में प्राप्त बहुत सारी जानकारी का आधार उनकी डायरी है, जिसे लिखने की उन्हें आदत थी। 1869 को उन्होंने अपनी बीमार माँ के पास पहुँचने के लिए अवकाश प्राप्त करने हेतु प्रार्थना पत्र दिया, जिसे बहुत देर से स्वीकृति मिली। फलस्वरूप माँ की मृत्यु के बाद ही वे घर पहुँच सके। निश्चय ही इस घटना ने उनके हृदय को विचलित किया होगा। इसके साथ ही फड़के तत्कालीन आर्थिक दशा को देखकर बहुत क्षुब्ध थे। 1876–77 में पश्चिमी भारत में भयंकर अकाल पड़ा, जिसके संबंध में उन्होंने लिखा था–''अंग्रेजों के शासन के कारण भारत की हजारों लाखों संतानें भूखों मर रही हैं। एक हाथ से तो सरकार पोषण करने का स्वांग रचती है, पर उसके दूसरे हाथ में डंडा है...। हमारे दुखड़े हैं बशर्ते कि हम उन्हें समझें।'' समझने और देखने की इसी तीव्र इच्छा ने वासुदेव बलवन्त फड़के को साधारण सरकारी कर्मचारी से हटकर एक ऐसा विद्रोही बना दिया, जिसका नाम भारतीय इतिहास में सदा के लिए अमर हो गया। ब्रिटिश राज्य का नाश करके भारतीय गणतंत्र की स्थापना करना उनका एकमात्र स्वप्न था। उन्हीं के शब्दों में ''सवेरे से रात्रि तक नहाते, खाते, सोते में केवल इसी विषय पर चिंतन करता था, पर्याप्त विश्राम नहीं कर पाता था।''

उनका संकल्प सराहनीय था, लेकिन साधनहीन वासुदेव के लिए ब्रिटिश राज्य से लोहा लेना सरल कार्य नहीं था। इस असंभव को संभव बनाने के लिए उन्होंने गंभीरतापूर्वक सारी समस्या पर विचार किया था और इस संबंध में उसके पास एक विस्तृत योजना थी। 20–21 फरवरी को पूना से 12 मील दूर लोनीखंड में दिये एक भाषण में उन्होंने अपना लक्ष्य को प्राप्त करने की विधि को बताते हुए कहा था कि 5000/– रु0 धनराशि की व्यवस्था करने के बाद मैं प्रत्येक दिशा में प्रतिमाह तीन या चार लोगों को केवल इसलिए भेजूँगा कि वे छोटी–छोटी टुकड़ियों की स्थापना कर लें, जिससे ब्रिटिश राज्य थोड़ा भयभीत हो। सरकार की शक्ति को कम करने के लिए यातायात और टेलीग्राफ के साधनों को नष्ट किया जाएगा। तदुपरांत जेलों के फाटकों को खोल दिया जाएगा। लंबी सजाएँ प्राप्त कैदी मेरे साथ मिल जायेंगे,...जिनकी सहायता से एक स्वतंत्र सेना का निर्माण हो सकेगा'' आदि–आदि।

इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए फड़के ने स्थान–स्थान पर भाषण देने आरंभ किये, किन्तु अंत में वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे शिक्षित वर्ग से अधिक अपेक्षा नहीं की जा सकती। अतः उन्होंने अपना ध्यान पिछड़ी जनता, विशेष रूप से रामोसी जाति की ओर केन्द्रित किया। इसी समय वासुदेव को दौलतराव रामोसी तथा गोविन्द राव दावारे नामक दो ऐसे सहयोगी मिले, जिन्होंने रामोसी जाति से सैनिकों में भर्ती करने में वासुदेव की बहुत मदद की। सह्याद्रि (सहयाद्रि) पहाड़िया वासुदेव की सेना का कार्यस्थल बनीं। यहीं पर उन्हें प्रशिक्षित किया जाता था और उनके सामने देशभक्ति पूर्ण भाषण दिये जाते थे।

सेना के संगठन के बाद फड़के के सामने आर्थिक समस्या थी। सर्वप्रथम उन्होंने धनी लोगों से ऋण लेने का प्रयत्न किया, इस आश्वासन के साथ कि स्वतंत्रता प्राप्ति होते ही मैं ब्याज के साथ उनका मूलधन वापस कर दूँगा। इस प्रयत्न में उन्हें निराशा मिली और अंत में उन्होंने डकैतियों का आश्रय लिया। डकैती का यह सिलसिला धामारी नामक गाँव से आरंभ हुआ और शीघ्र ही पूना के आस–पास के गाँवों में फैल गया। इन डकैतियों में फड़के को धन तो मिला, किन्तु रामोसी जाति के ऊपर से विश्वास उठ गया। लूट के माल ने रामोसियों के ईमान को डिगा दिया और यह स्पष्ट कर दिया कि उनमें और साधारण लुटेरों की भावनाओं में कोई विशेष अंतर नहीं है।

फड़के ने सेना भंग कर दी। रामोसी जाति का साथ छोड़ दिया। इस समय उनकी निराशा का कोई अंत नहीं था। उनके कई वर्षों का परिश्रम व्यर्थ गया था। नैराश्य के इन्हीं क्षणों में उन्होंने श्रीशैल मल्लिक अर्जुन के मंदिर में शरण ली, इस निश्चय के साथ की ईश्वर ने उनका साथ नहीं दिया तो वे ईश्वर के चरणों में अपना जीवन समर्पित कर देंगे।

सौभाग्य से फड़के ने इस निर्बल क्षणों पर विजय प्राप्त ली। वे गंगपुर वापस चले गये, जहाँ उन्हें रघुनाथ मोरेश्वर का सहयोग मिला। मोरेश्वर ने फड़के को एक रोहिला सरदार इस्माइल खाँ से मिलाया। फड़के ने एक बार फिर नये सिरे से रोहिला सरदार तथा कुछ अन्य लोगों की सहायता से 900 सशस्त्र व्यक्तियों को संगठित किया, किन्तु उनके कुछ सहयोगियों की मृत्यु तथा ब्रिटिश सरकार द्वारा जनता के दमन ने फड़के के संगठन को निर्बल कर दिया। यहीं पर फड़के के रोमांचक जीवन के एक पहलू का अंत होता है।

फड़के के जीवन का दूसरा पहलू ब्रिटिश सरकार की प्रतिक्रिया से जुड़ा हुआ है। फड़के के विचार, उनका लक्ष्य, उनकी सक्रियता–सभी ने तत्कालीन सरकार का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया था। पूना स्थित तमाम फौज तथा पुलिस फड़के को पकड़ने में लगा दी गई थी, किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिल रही थी। अंततः मेजर डेनियल को इस कार्य में सफलता मिली। जिस समय फड़के गंगपुर में अपनी सेना का पुनर्निर्माण करने में व्यस्त थे, उसी समय मेजर डेनियल पूरी शक्ति से उन्हें बंदी बनाने का प्रयत्न कर रहा था। 20 जुलाई, 1879 को डेनियल ने सूचना मिलते ही गंगपुर को घेर लिया। किसी तरह से फड़के यहाँ से भाग जाने में सफल हुए, लेकिन उनके कागजात डेनियल के हाथ में पड़ गये। इन कागजातों में एक डायरी थी, बम्बई की सेना का एक नक्शा और बम्बई के गवर्नर को मारने के लिए इनाम की घोषणा थी। इन्हीं के आधार पर फड़के को बाद में दंडित किया गया था।

गंगपुर से भागने के उपरांत फड़के अकेले ही इधर–उधर भागते रहे। मेजर डेनियल की सेना लगातार उनका पीछा कर रही थी। 21 जुलाई, 1879 को डेनियल ने थके हुए वासुदेव बलवंत फड़के को देवर नामक गाँव के एक मंदिर में सोते हुए पकड़ा। उनके विरुद्ध 121 (राजद्रोह), 124 (राजद्रोही भाषण) और 395 (डकैती) की दफाएँ लगायी गयी। इन्हीं के

आधार पर मुकदमा चला। इस मुकदमें के दौरान फड़के ने एक स्मरणीय वक्तव्य दिया–''हम भारतवासी मृत्यु के द्वार पर खड़े हैं, जनता इतनी पीसी जा चुकी है, फिर भी उसपर रोज नई–नई विपत्तियाँ आती रहती हैं।...गुलामी के इस जुए को ढोने से मृत्यु श्रेयस्कर होती। मेरा उद्देश्य भारत में स्वतंत्र गणराज्य स्थापित करना था, इसलिए मुझे न तो ईश्वर की ओर से कोई डर है, न सरकार से...। मैंने बराबर यह कहा है कि अंग्रेजों की हत्या हमारा कर्तव्य है। मैं सैनिक वित्त विभाग में नौकर था, जहाँ मुझे सरकारी गुप्त बातें मालूम होती थीं। मेरा यह विश्वास है कि मेरी तरह पच्चीस तुले हुए व्यक्ति ब्रिटिश शासन को नष्ट कर सकते हैं...। महर्षि दधीचि ने अपनी हड्डियाँ देकर देवताओं का कल्याण किया था...। भारतवासियो! मैं दधीचि की तरह क्यों न कष्ट उठाऊँ, यदि इससे आपका गुलामी से उद्धार होता है, तो मैं क्यों न सर्वस्व दान करूँ। मेरा अंतिम प्रणाम स्वीकार करो।''

फड़के को आजीवन कारावास का दंड दिया गया। ब्रिटिश सरकार की दृष्टि में फड़के इतने खतरनाक बंदी थे कि उन्हें 2 जनवरी, 1980 को अदन भेज दिया। उसी वर्ष फड़के ने वहाँ से भागने का प्रयत्न किया, किन्तु पकड़े गये। इसी जेल में 17 फरवरी 1883 को उनकी मृत्यु हुई।

फड़के को अपने संपूर्ण संघर्षकाल में गाँवों की अनपढ़ जनता का पर्याप्त सहयोग मिला। अपने मुकदमें के दौरान उन्होंने शिक्षित वर्ग की भी पर्याप्त सहानुभूति प्राप्त की। यहाँ तक कि 'शिवाजी', 'बोध सुधाकर' आदि समाचार पत्रों ने भी (जो कि फड़के की कार्यप्रणाली के विरुद्ध थे) फड़के के लक्ष्य की ओर उनके देशप्रेम की सराहना की थी। 'डेकेन स्टार' नामक अंग्रेजी समाचार पत्र ने फड़के की प्रशंसा करते हुए लिखा–''हम उन्हें भारत के उज्ज्वल भविष्य का अग्रदूत मानते हैं।''

1857 के स्वतंत्रता संग्राम के बाद वासुदेव बलवंत फड़के के जीवन ने कई अर्थों में भावी सशस्त्र संघर्ष को दिशा प्रदान की। उन्होंने सर्वप्रथम अंग्रेजों के विरुद्ध गोरिल्ला रणनीति का अनुसरण किया। अपने संगठन के लक्ष्य को पाने के लिए आर्थिक साधनों के महत्त्व को समझा और उसपर विचार किया। उनका विचार था कि भविष्य में स्वतंत्र भारत का राजनीतिक स्वरूप प्रजातांत्रिक होना चाहिए। वे 1857 के बाद के भारतीय इतिहास के प्रथम राजनीतिक बंदी और स्वतंत्रता संग्राम के प्रथम शहीद थे। ''फड़के सही अर्थ में भारतवर्ष में सशस्त्र क्रान्तिकारी आंदोलन के जनक एवं पथ–प्रदर्शक थे।'' ('विप्लव यज्ञ की आहुतियाँ' लेखक बटुकनाथ अग्रवाल)

अनुपमा तिवारी
जयपुर

लघुकथा :

जमाना

पड़ोसन सुबह से फोन पर लगी है। उधर से भतीजी अपनी स्थिति बता रही है। उसकी कोई परीक्षा होनेवाली है, जिसमें परीक्षा में नंबर टाइप विधि से ज्यादा प्राप्त करने की जुगत चल रही है।

बुआ इधर से अपने परिचितों के नंबर फोन में खंगाल रही है और बीच–बीच में भतीजी से बात करते हुए झिड़की भी लगा रही है–''पागल! तू तो सर से कह देना, रिक्वेस्ट कर लेना।'' उधर से भतीजी कह रही हे–''एग्जामिनर तो शुरू–शुरू में तो सख्ती करते हैं, बाद में तो टिप देते हैं।''

पहले ही क्यों नहीं टिप देते जैसी बातें करती हुई बुआ घर के अंदर–बाहर का दरवाजा बंद करने, पौधों में पानी देने, अलगनी से कपड़े उतारने जैसे काम करती जा रही हैं। सामनेवाली आंटी टोकती है।

''क्या हुआ, क्यों परेशान है मीना?''

'अरे, आंटी! कोई बात ही नहीं बन रही है, वो क्या कल उमा का एग्जाम है। सबका टिपने का इंतजाम हो रहा है, बस उसका ही नहीं हुआ अभी तक।

तो क्या हुआ?

अरे, आंटी! आप नहीं समझते, यह जमाना ही ऐसा है।

2 पुरस्कार

मोहनलाल हॉकर के इंतजार में गेट पर कबसे झूम रहे थे। उसके दूर से दिखते ही उन्होंने मुस्तैदी से अपने अखबार के साथ–साथ और दो अलग–अलग अखबार भी ले लिये, क्योंकि उनमें भी उनके बारे में समाचार छपने का उन्हें अंदाजा था। वे अखबारों के संभावित पृष्ठों को कार के बोनट पर रखे–रखे ही देखने लगे। अंदर से पत्नी कई बार आवाज लगा चुकी थी–तुम्हारी चाय बिल्कुल ठंढी हो गई है।

लेकिन वे हैं कि आज उन्हें चाय की चुस्कियों से ज्यादा अखबार की फिक्र है। आज उनकी फोटो के साथ में राज्य के सभी प्रमुख समाचार पत्रों में सरकार की ओर से साहित्यिक योगदान के लिए एक बड़ा पुरस्कार मिलने का समाचार प्रकाशित हुआ है। कुछ मित्र फोन पर, तो कुछ मैसेज से, तो कुछ वाटसप पर घंटे भर से बधाई लिख रहे है। वे बधाई ले रहे हैं और सभी को शुक्रिया लिख रहे हैं, क्या इतनी बड़ी खुशी के लिए बधाई का जवाब सिर्फ शुक्रिया लिखना ही काफी है? लेकिन उनसे शुक्रिया के अलावा कुछ लिखा ही नहीं जा रहा है। इसलिए वे इस शब्द को एक बार लिखकर ही वाटसप पर सबको फारवर्ड किये जा रहे हैं। इस जवाब के लिखने में उनके चेहरे से पुरस्कार की गरिमा और उसके मिलने का उत्साह गायब है।

दरअसल उन्हें पहले से ही पता था कि यह पुरस्कार उन्हें ही मिलनेवाला है, आखिर ज्यूरी कमिटि के अध्यक्ष और पाँच में से तीन तो उन्हीं के यार, दोस्त हैं और फिर वे भी तो एक बड़े साहित्यिक मंच के अध्यक्ष हैं।

बीस दिन बाद शहर के प्रेस क्लब में मंच सजा, ज्यूरी के अध्यक्ष, उसके दो सदस्य और शहर के दो जाने–माने साहित्यकार मंच पर विराजमान थे। उनके सामने लंबी टेबुलों पर सफेद चादरें बिछी थीं। टेबुलों पर प्लास्टिक के सुंदर रंगबिरंगे फूल, फूलदान में रखे थे। कार्यक्रम की संचालक महोदया मोहनलाल जी के साहित्यिक योगदान में घूघरे बाँध रही थीं मीडिया के स्थानीय चैनल मुस्तैद हो अपने काम में जुटे थे। समाचारपत्र वाले पहले ही कह चुके थे कि आज मुख्यमंत्री की बैठक है। एक बड़ा आयोजन है और एक आंदोलन चल रहा है, जिसमें कवरेज के चलते किसी का आपके आयोजन में आना नहीं हो पाएगा। उसके लिए उन्होंने तीन–चार फोटो के साथ समाचार बनाकर भेजने के लिए आयोजकों को पहले ही बोल दिया है।

स्वागत कार्यक्रमों की भूमिका और मोहनलालजी के रचनाकर्म के गुणगान के बाद उन्हें मंच पर आमंत्रित किया गया। अध्यक्ष जी से उन्हें शॉल ओढ़ाया गया, सम्मान पत्र, श्रीफल और इक्कीस हजार रुपये का चेक दिया गया और बोले–आपको बहुत शुभकामनाएँ। आप भी हमें बुलायेंगे तो अच्छा लगेगा। दर्शकों की तालियों से सभागार गूँज उठा। मोहनलाल जी अपने सिर पर एक भार लेकर स्टेज से नीचे उतर आए।

आलेख/

अटलजी के काव्य की उपादेयता

डॉ0 अवधेश कुमार चन्सौलिया
दीनदयालनगर, ग्वालियर (म.प्र.)
09425187203

अटल बिहारी वाजपेयी राजनेता, कवि, पत्रकार, कुशल वक्ता और संवेदनशील मनुष्य थे। बचपन से ही उन्हें विरासत में साहित्यिक गुण मिले। महाविद्यालयीन पढ़ाई के समय से ही वे भाषण, वाद–विवाद तथा कविता में राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बना चुके थे। इसके साथ ही राष्ट्रधर्म, स्वदेश पांचजन्य तथा वीर अर्जुन जैसे समाचार पत्रों से जुड़कर पत्रकारिता के क्षेत्र में भी वे प्रतिष्ठित हो चुके थे। सन् 1955 में उन्होंने विजय लक्ष्मी पंडित के लोकसभा से इस्तीफा देने से रिक्त हुई सीट पर लखनऊ से जनसंघ के प्रत्याशी के रूप में चुनाव लड़कर राजनीति के पाठ की भी शुरुआत कर दी थी। उस चुनाव में उन्हें हार का सामना करना पड़ा। सन् 1957 के द्वितीय आम चुनाव में बलरामपुर से उन्हें विजयश्री हासिल हुई।

साहित्यिक संस्कारों के कारण स्कूली शिक्षा के दौरान ही उनका काव्य–सृजन का कार्य प्रारंभ हो गया था। कॉलेज की शिक्षा के समय वे कवि सम्मेलनों में भी शिरकत करने लगे थे। कवि सम्मेलनों में अटलजी का मंचीय साहचर्य नीरज, देवराज दिनेश, शिवमंगल सिंह सुमन आदि के साथ रहा। बरसाने लाल चतुर्वेदी जी ने भी बहुत से कवि सम्मेलनों में अटल जी के साथ कविता पाठ किया। डॉ. चतुर्वेदी ने एक बार कहा था कि ''अटलजी में दिनकर के ओज और राष्ट्रवाद के साथ–साथ नीरज की तरलता और भावुकता भी थी। अगर वे काव्य की यात्रा ही करते तो निश्चय ही आज चोटी के नेता होने के बजाय चोटी के कवि होते।''1 अटलजी जैसे बहुआयामी व्यक्तित्व विरले ही होते हैं। उनके व्यक्तित्व में व्यक्ति और समाज दोनों का शानदार समन्वय है।

समाज एवं देशवासियों की चिंता करनेवाले अटलजी राजनीति के माध्यम से सुनियोजित तरीके से अपने लक्ष्य की ओर बढ़े। काव्य और राजनीति दोनों ही माध्यमों से उन्होंने राष्ट्र और समाज की सेवा करने का भरसक प्रयास किया। समाज सेवा वही कर सकता है, जो छोटे–बड़े का भेद न समझे। सभी को बराबर का दर्जा दे। राजा और रंग दोनों को समान माने। इसी भाव से समेटती एक कविता है–'पहचान' इसमें अपने मन के भाव कुछ इस तरह व्यक्त हुए हैं–

''आदमी न ऊँचा होता है, न नीचा होता है
न बड़ा होता है, न छोटा होता है
आदमी सिर्फ आदमी होता है।''2

प्रधानमंत्री काल में वे छोटे से छोटे आदमी और कार्यकताओं से मिलकर उनकी समस्या का समाधान करते थे, अपनी कविताओं में आदमी के अंदर संघर्षीय चेतना का विस्तार करते हैं–

''आदमी को चाहिए कि वह जूझे
परिस्थितियों से लड़े
एक स्वप्न टूटे तो दूसरा गढ़े।''3

अटलजी मनुष्य को भय से मुक्त करना चाहते हैं, क्योंकि भय प्रगति को रोक देता है। भय व्यक्ति को कमजोर बना देता है। अतः भय, समाज एवं राष्ट्र दोनों के लिए दुखदायी है। आतंक का मुकाबला भयरहित होकर ही किया जा सकता है। इसलिए वे भय रहित होकर समस्या से जूझने का आह्वान करते हैं। इस संघर्ष में भले ही हमें अपने प्राणों की आहुति देनी पड़े। उसकी चिंता नहीं करना चाहिए–

''इस जीवन से मृत्यु भली है
आतंकित जब गली गली है
मैं तो रोता आसपास जब
कोई कहीं नहीं होता है।''4

अटलजी महिलाओं के प्रति विशेष सहानुभूति रखते हैं। वे नहीं चाहते कि लोग उन्हें हेय दृष्टि से देखें। वे चाहते हैं कि पुरुष उनका सम्मान करें और बराबरी का दर्जा दें। नारी में वे अपार संभावनाओं को देखते हैं। आज की नारी आदमी के साथ कंधे से कंधा मिलाकर सभी कार्य कर रही है। उनका मत है कि उसके कार्य की सराहना करो न कि प्रताड़ित करो–

''औरत ने काम सँभाला है
सब कुछ देखा है भला है
मुँह खोलो तो जय–जय बोलो
वरना तिहाड़ का ताला है।''5

अटलजी की गहरी संवेदना के कवि हैं। संवेदना समाज के लिए बहुत ही जरूरी है। दया, ममता, स्नेह, करुणा आदि मानवीय भाव हृदय में तभी उमड़ते हैं, जब व्यक्ति में संवेदना हो। संवेदना समाज को जोड़ने का काम करती है, इससे समाज में सद्भावना का संचार होता है। अटलजी को हीरोशिमा पर अमेरिका द्वारा की गयी परमाणु बमबारी बहुत व्यथित करती है–'हीरोशिमा की पीड़ा' कविता में उनकी यह पीड़ा इस तरह व्यक्त हुई है–

''किसी रात को मेरी नींद अचानक टूट जाती है
आँख खुल जाती है, मैं सोचने लगता हूँ कि
जिन वैज्ञानिकों ने अणु अस्त्रों का आविष्कार किया था
वे हीरोशिमा नागासाकी के भीषण नरसंहार के समाचार सुनकर रात को सोये कैसे होंगे?''6

राजनीतिक व्यक्ति इतना संवेदनशील होगा, बड़ा आश्चर्य होता है। ऐसे व्यक्ति के क्रूर कार्य हो ही नहीं सकते। वह सदैव प्रजा और देश का कल्याण ही सोचेंगे। वह किसी के साथ अनर्थ नहीं कर सकता। वे बहुत ही साहसी भी रहे हैं। वे मृत्यु से नहीं डरे। बीमारी का इलाज कराने वे अमेरिका गये हुए थे। बीमारी ने गंभीर रूप ले लिया था। उस समय अस्पताल में उन्होंने एक कविता लिखी–'मौत से ठन गयी' उसकी कुछ पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं–

''मौत की उम्र क्या? दो पल भी नहीं
जिंदगी–सिलसिला आजकल की नहीं
मैं जी भर जिया, मैं मन से मरूँ
लौटकर आऊँगा कूच से क्यों डरूँ?''7

कवि पुनर्जन्म में विश्वास करता है। यह भारतीय दर्शन की प्रमुख विशेषता है। आत्मा अमर है। यह शरीर बदलता है। इसलिए कोई भी सनातनधर्मी मौत से नहीं डरता, क्योंकि वह जानता है कि उसे फिर से इसी धरती पर जन्म लेना है। वह आयेगा और फिर अपने मिशन में जुट जाएगा।

इतना बड़ा विश्वस्तरीय नेता, नेता वह जानवरों से भी प्रेम करे, यह बहुत ही महत्वपूर्ण बात है। 'बाबली की दीवाली' कविता में उन्होंने दो कुत्तों की चेष्टाओं, क्रीड़ाओं और उनकी हरकतों का बहुत ही बारीकी से वर्णन किया है, जैसा प्रेमचंद ने 'दो बैलों की कथा' कहानी में किया है। यह लंबी कविता है।

भावातिरेक से परिपूर्ण यह कविता अटलजी के सहज, सरल व्यक्तित्व को भलीभाँति प्रकट करती है–

''बबली, लौली कुत्ते दो
कुत्ते नहीं खिलौने दो
पाँव पसार पलंग पर सोते
अगर उतारो मिलकर सोते।''8

प्राणिमात्र पर दया करना, यही गुण हमारी सभ्यता और संस्कृति को अन्य सभ्यताओं से अलग करता है। अटलजी भारतीयता की प्रतिमूर्ति थे। राष्ट्र से उन्हें अनन्य प्रेम था। उनकी पत्रकारिता और भाषण सभी देशप्रेम का अतिरेक है। हिन्दी में संयुक्त राष्ट्र में भाषण देकर उन्होंने अपने देशप्रेम को सिद्ध भी कर दिया। राष्ट्रीय चेतना से भरपूर उनकी कविताओं में वीररस की प्रधानता है। इस दृष्टि से 'स्वतंत्रता दिवस की पुकार', 'अमर आग है', 'परिचय', 'आज सिन्धु में ज्वार उठा है', 'जम्मू की पुकार', 'कोटि चरण बढ़ रहे ध्येय की ओर निरंतर', 'गगन में लहराता है भगवा हमारा', 'उनकी याद करें', 'अमर गणतंत्र' आदि कविताएँ महत्वपूर्ण हैं। सादा जीवन उच्च विचार उनके जीवन का सिद्धांत रहा। यह सिद्धांत उनकी कविताओं में भी परिलक्षित होता है, उनमें उन्होंने बोलचाल की भाषा का प्रयोग कर साधारण जनमानस के लिए सुलभ बनाया। यद्यपि उन्होंने अपने काव्य के शैल्पिक विधान को ज्यादा सजाया–सँवारा नहीं, फिर भी कहीं–कहीं काव्य में स्वतः ही मुहावरे, अलंकार आकर उसकी शोभा बढ़ाकर उसे और अधिक सम्प्रेषणीय बना देते हैं–''ताला फटकारा झख मारा, बाकी ठन–ठन गोपाला है, गर्दिश में हो तो गर्द बना।''9 इन पंक्तियों में मुहावरा की शोभा से काव्य में लाक्षणिक गुण का सुंदर समावेश हो गया है। देश की वर्तमान दयनीय दशा से क्षुब्ध होकर वे देशवासियों को संबोधित करते हुए कहते हैं–

''आँख खोलकर देखो। घर में भीषण आग लगी है
धर्म सभ्यता संस्कृति खाने दानव क्षुधा जगी है
हिन्दू कहने में शरमाते दूध लजाते लाज न आती
घोर पतन है अपनी माँ को माँ कहने में फटती छाती।''10

वे समन्वयवादी थे। समाज, राष्ट्र एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी वे समन्वय को महत्त्व देते रहे। इसी समन्वय के कारण वे 24 दलों के साथ सफलतापूर्वक पाँच साल तक सरकार चलाते रहे। वे राजनीति में ऐसे शलाका पुरुष रहे, तो सभी दलों द्वारा सदैव सम्मानित रहकर अजातशत्रु बने रहे। अटल जी गाँधीजी के विचारों से प्रभावित व्यक्ति थे। यही कारण है कि वे 'जंग न होने देंगे' जैसी कविता का सृजन करते हैं। हिंसा त्यागने का भाव हमारे धार्मिक ग्रंथों में भरे पड़े हैं। हमारे धर्म में शान्ति को प्रमुखता दी गई है। इसी शान्ति की बात वे अपनी कविता–'जंग न होने देंगे' में करते हैं। 'कदम मिलाकर चलना होगा' कविता में अटलजी एकता, साहस, त्याग और राष्ट्रीय चेतना के स्वरों को उच्च भावभूमि पर ले जाते हैं। उनका विचार है कि देश की खातिर–

''जीवन को शत शत आहुति में
जलना होगा गलना होगा
कदम मिलाकर चलना होगा।''11

उनकी कविताओं में मानवीय मूल्यों की चिंता सभी जगह विद्यमान हैं। भारतीय संस्कृति, यहाँ के पर्व–त्योहार, रीति–रिवाज और चिंतन का अगाध भंडार उनकी कविताओं में प्राप्त होता है। जिजीविषा एवं आशा का भाव भरनेवाली उनकी कविताएँ पाठकों को पलायन और संत्रास से मुक्त करती हैं। उच्च आदर्शों से परिपूर्ण उनकी विचारधारा सदैव लोगों को मर्यादा में रहते हुए नीतिपूर्वक जीने की प्रेरणा देती रहेगी।

उन्होंने सदैव नैतिकता से सम्पृक्त जीवन जिया। एक वोट से हारना स्वीकार किया, लेकिन वोट खरीदकर सत्ता में बने रहना उन्हें बिल्कुल भी नहीं भाया। ऐसे राजनीतिज्ञ विश्व में विरले ही मिलते हैं। बेदाग तथा नैतिक मूल्योंवाला जीवन जीने के लिए उनकी तथा उनके काव्य की उपादेयता हर युग में बनी रहेगी।

संदर्भ–1. मेरी इक्यावन कविताएँ, अटल बिहारी वाजपेयी, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2019, पृ.160
2.वही, पृ.18, 3.वही, पृ.20 4.वही, पृ.32
5.वही, पृ.103 6.वही, पृ.38 7.वही, पृ.94
8.वही, पृ.58 9.वही, पृ.103 10.वही, पृ.59
11.वही, पृ.86

लघुकथा :

लंच बॉक्स

मनोरंजन सहाय सक्सेना
जयपुर राजस्थान
मो. 9461093077

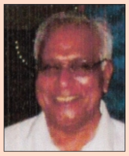

सुबह ऑफिस के लिए निकलते पति से पत्नी की जोरदार झड़प हो गयी। पति ने ना तो नाश्ता किया, न लंच का डिब्बा लिया और बड़बड़ाता हुआ घर से निकल गया।

लंच में भूख से बिलबिलाता पति अपनी केबिन से बाहर निकला तो सुरक्षाकर्मी ने उसे लंच का डिब्बा पकड़ाते हुए कहा–''मेडम आई थी, आप सीट पर नहीं थे, इसलिए मुझे आपको देने के लिए लंचबॉक्स पकड़ा कर चली गयी।

शाम को पति घर आया तो बोला–पागल हो गई थी, उस तपती दोपहर में घर से 14 किलोमीटर दूर बसों में धक्के खाते हुए लंचबॉक्स ऑफिस देने जाने की क्या जरूरत थी, तुम्हें सनस्ट्रॉक हो जाता तो....?

पागल तो सुबह हो गयी थी, जो यह भी भूल गई थी कि आप ऑफिस जा रहे हैं और बिना बात आपसे झगड़ा कर बैठी। पत्नी ने समझौता करने के स्वर में कहा तो पति बोला–''मैं भी तो तुम्हारी पूरी बात सुने–समझे बिना ही डाँट दिया। सॉरी यार! कहकर पति ने पत्नी की ओर देखा, तो पत्नी बोली–''अब मुझे फिर रुलाओगे क्या....?सुनकर सुबह हम दोनों ही पागल हो गये थे, कहते हुए पत्नी को गले लगा लिया।

आलेख /

अमृत महोत्सव का नुक्कड़

डॉ. अरुण तिवारी गोपाल
117/69 एन तुलसीनगर
काकादेव, कानपुर नगर (उ.प्र.)
मो. 8299455530

हमारे यहाँ की संस्कृति ही वह युग सीता है, जिसके लिए 'घर संस्कृति संस्थापक' यहाँ की धरती मैया, स्वयं धर्म धरती है और युग–सत्ताधारियों को जीवित या मृत, सिर्फ तिरस्कार और संस्कृति को अपने हृदय पटल का दुलार देती है। हम सनातन धर्मी लोग विभिन्नता में इसी 'घर संस्कृति' का एकत्व जीते हुए–'कामये दुखतप्तानाम् प्राणीनामार्तिनाशनम्' की पार्थिव सहकारवृत्ति कामना को जीवन शैली मानते हैं।

अमृत महोत्सव की पूर्व पीठिका में काश्मीर की धारा 370 का विलय, मर्यादा पुरुषोत्तम के आँगन में विग्रह की स्थापना की नींव, प्राक् इतिहास से भी पूर्व की मांगलिक शिवत्व साधना का, विश्वनाथ–काशीधाम का पुनर्मंडन ही नहीं, वरन् वैश्विक प्राकृतिक महामारी कोविड–19 की त्रासदी के भी समानांतर, भारतीय वैज्ञानिकों के अद्‌भुत संवेद प्रतिभा ने, अपने स्वास्थ्य–सुरक्षा, पर्यावरण, शिक्षा, अंतरिक्ष समुद्र, विज्ञान, योग, जीवन पद्धति में सुधार एवं अनुवांशिकी समेत लोक और जीवन के सभी क्षेत्रों में जिस तरह चुनौतीपूर्ण समाधान दिये, उससे पूरी दुनिया में गौरव अभिवृद्धि हुई है। विश्व की कथित प्रगतिशीलता, अपने विकास यज्ञ में भारत को अगर 'अग्रपुरुष' नहीं मानेगी तो 'कालयाज्ञिक' उसे अवश्य समझाएगा कि यह भारत ही अग्रगण्य वैज्ञानिक व काल दार्शनिक है, वही स्थिति, काल, अग्नि, आहुति और ऊर्जा तो अर्थात् आत्मा है–

ऐष वै देवताः सर्वा देशकालधनादयः।
अग्निराहुतयो मंत्राः सांख्ययोगश्च यत्परः।।
सर्वभूतात्मभूताय–भारतायानन्यदर्शिने।'

और इसी आलोक के परिप्रेक्ष्य में सर्वप्रथम वैज्ञानिक चेतना के गवाक्ष से कुछ जानते हुए आगे बढ़ते हैं, क्योंकि पार्थिव प्रगति के आँगन में हमें झूठे इतिहास से प्रायः वायव्य दार्शनिक समझने का भ्रम बनाया है। रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन (डी.आर.डी.ओ.) ने ड्रोन प्रतिरोधी, मिसाइल, प्रौद्योगिकी इसी आपदाकाल में निर्मित व विकसित की। यह मानव रहित एयरक्राफ्ट्स का पता लगाने तथा उन्हें रोक पाने में समर्थ है। यह तकनीकी पूरे 360 डिग्री के वर्तूल में पर्यवेक्षण कर सकने में सक्षम है। इस ड्रोन प्रतिरोधी प्रौद्योगिकी (यूएवी) को डीआरडीओ द्वारा भारत इलेक्ट्रॉनिक्स को हस्तांतरित किया गया है। भारत की सीमा पर इसके कुशल पर्यवेक्षण ने इस वर्ष पाक–चीन प्रभृति राष्ट्रों द्वारा समर्पित आतंकी प्रतिक्रियाओं पर इसके सफल तात्कालिक और दूरगामी परिणाम दृष्टिगत हुए हैं और विषुवत् रेखा वासी हो या हिमवासी सभी माँ भारती के पुत्र अब चिंतामुक्त, सुरक्षित, सुकून की नींद ले सकते हैं, ले रहे हैं।

रेडियो खगोली, भौतिकी राष्ट्रीय केन्द्र, टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान पुणे के वैज्ञानिकों ने एक रेडियो गैलेक्सी अवशेष की उपस्थिति ज्ञात करके राष्ट्र कीर्ति को विश्व में और ऊँचाइयाँ दीं। विश्व की बहिर्दृष्टि नहीं समझती कि हमारी लोकव्यापी अंतर्दृष्टि में बाह्यसौंदर्य का प्रसार व्यंजक रूप में साधित है, तभी तो हमारी अंतर्भुक्त–पाषाणी–संस्कृति के आभ्यंतर में–शंकर का अद्वैत, अमूर्त बौद्धों का सहज, वैष्णवी अनुरागी वृत्ति, योगियों का हठी–अलख ही समवेत हमारे शब्दों में 'रसो वै सः' है और हम आत्मावस्थित 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की चिंता में आनंदमग्न श्रमिक हैं। इसीलिए धरा से गगन यात्रा में हमारी 'घर संस्कृति' अन्य धरित्री परिजनों को साथ ले जाने के क्रम में 'इसरो' ने जब एक और पोलर सेटेलाइट लॉन्च व्हीकल पीसीएलवी का प्रमोचन किया, तो ब्राजील के एमेलेनिया फर्स्ट समेत 18 अन्य सहयोगी उपग्रहों को साथ ले गयी। डीआरडीओ ने नई पीढ़ी की परमाणु सम्पन्न बैलिस्टिक मिसाइल–अग्नि प्राइम का सफल परीक्षण भी किया। केन्द्रीय यांत्रिक अभियांत्रिकी अनुसंधान–(सीएसआईआर– सीएमआरआई) ने कोविड–19, बीमारियों के रोगियों के उपचार हेतु ऑक्सीजन संवर्धन प्रौद्योगिकी का विकास किया।

स्वास्थ्य के क्षेत्र में शिशुओं को प्रभावित करनेवाले रोटा वायरस जनित दस्त से सुरक्षा हेतु भारत बायोटेक द्वारा निर्मित रोटावेक 5डी. नामक टीके का विश्व स्वास्थ्य संगठन की ओर से अनुमोदन और इस टीके का यूनिसेफ जैसी संस्थाओं द्वारा विश्व स्तर पर उपयोग की स्वीकृति और संस्तुति व कोरोने की त्रासदी से विश्व को उबारने में राष्ट्र ने सच्चे युग–धन्वंतरि का चिरप्रसिद्ध उत्तरदायित्व जिया है।

टेलिमेडिसिन, डिजिटल स्वास्थ्य सेवा, कृत्रिम बुद्धिमत्ता के नये स्टार्टअप हो या समुद्र के गहन अध्ययन करने और सामुद्रिक स्रोतों के संयमित दोहन की प्रौद्योगिकी विकास परियोजनाएँ हों। हमने यहाँ भी कुटिल नहीं घर–संस्कृति को ही जिया है और उसकी विश्व से स्वीकृति व समादर पाया है।

जल, धरती, वायु की स्वच्छता के नवाचार में हमने विश्व को घर संस्कृति के नवपाठ पढ़ाए–जबकि इतिहास साक्षी है कि विश्व की स्वार्थी कथित आभिजात्य की औपनिवेशिक वृत्ति ने हमारी घर–संस्कृति के विश्व के प्राचीनतम, औदात्त, अपौरुषेय वैदिक/लौकिक दस्तावेज को कितना गंदलाया है और इसकी भी भरपाई हम 'श्रुत–परम्परा' से 'ब्लाकचेन प्रौद्योगिकी' तक सफल रूप से करते रहे। सिर्फ क्रिप्टोकरेंसी नहीं, इस डिजिटल खाता बही में हमारी पूरी घर संस्कृति की इयत्ता भी सुरक्षित रहेगी। इसी डिजिटल बही से हमें अपनी परम्परा से भी और मार्क ट्वेन आदि के शब्दों में भी एक साथ पूरी प्रामाणिकता के साथ परिचित होते रहेंगे, देखें–मार्क ट्वेन की रसीद–'बनारस इतिहास से भी पुराना है, पौराणिक कथाओं से भी पुराना है और इस सभी को मिलाने से जितनी प्राचीनता हो सकती है, यह शहर उससे भी दुगुना प्राचीन है। जहाँ दुनिया के अन्य प्राचीन शहर साम्राज्यवादी और औपनिवेशिक हमलों में ध्वस्त होकर नये हुए, वहीं काशी अपनी उसी विशिष्ट उत्साह के साथ गतिमान है।' ऐसे ही अन्य विश्वस्तरीय विद्वानों की स्वीकृति, एक स्थान पर पूरा विश्व आज पढ़ और जान पा रहा है, इस ब्लाकचैन प्रौद्योगिकी से, तो अमृत महोत्सव में हम आश्वस्त हैं कि विश्व में हम जैसा कोई नहीं।

'आत्मवत् सर्वभूतेषु' मानते हुए 'ऋतस्य पथां प्रेत' के अनुयायी होकर हम विश्व में घर संस्कृति के संस्थापक व निर्वाहक हैं। इस सनातन दृष्टि को विश्व ने समझकर ही–'विश्व योगदिवस' मनाना शुरू कर दिया है।

अमृत महोत्सव साक्षी है कि संपूर्ण स्वतंत्रता के लिए 1857 से लेकर संविधान निर्माण तक का प्रकल्प दान में नहीं, बलिदान से अर्जित हुआ है–उसकी रीढ़ है ग्राम पंचायती व्यवस्था तथा छोर है–हैदराबाद जैसी पूर्व विलयत और कश्मीर जैसी सद्यः धारा 370 विलय का प्रतिफलन। षट्ऋतुधर्मी, विश्व में एकल लोकतंत्र अपनी विराटता में गाँव को ही राष्ट्रीय इकाई मानता है, जिसे 73वें संशोधन के उपरांत राज्य और केन्द्र सरकार के सत्ता विकेन्द्रीकरण के अनन्तर विशेष महत्ता दी गई।

इस अमृत महोत्सव पर हम यह नहीं भूलें हैं कि भारत की राष्ट्र चेतना मुगलिया सल्तनत के आक्रमणों, लूट और अत्याचार से नहीं, वरन् वैदिक काल से ही–'माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्यां' व पुराणों से–'उत्तरं यत्समुद्रस्य, हिमाद्रश्चैव दक्षिणम्, वर्ष तद्भारतम् नाम भारती यत्र संतति' तत्पश्चात्–शंकराचार्य द्वारा धर्म के आवरण में–भारतीय सांस्कृतिक एकता हेतु चारो कोनों में मठ स्थापना में उपस्थिति और अनवरत हो रही है। हम यह

नहीं भूल सकते कि विश्व के किसी राष्ट्र को मिली परतंत्रता और स्वतंत्रता ने वहाँ का इतिहास बदला है, भूगोल नहीं और हमारे यहाँ इतिहास व संस्कृति वही रही, पर भूगोल खंडित हुआ है–इसका कारण भी हमारी सहिष्णुता तात्कालिक गांधीवादी तुष्टि नीति और राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना को आत्मसात् ना कर पानेवाली जाति–धर्म का दोगला राष्ट्र चरित्र है।

इस अमृत महोत्सव की जागृत निष्ठा में स्पष्ट है कि क्षेत्रीय व जाति आधारित छोटे दलों की राजनीति और हमारी सांस्कृतिक चेतना को आत्मसात ना करनेवालों के गृहभेदियों से बड़ा हमारा कोई शत्रु और प्रगति बाधक नहीं है। आईने की तरह स्पष्ट रहे कि जिस माटी में पले, जिन नागरिकों को अपने राष्ट्रभक्ति उगने की संभावना न होती है, न हो सकती है। खंडित भारती के आभारती–खंडित विग्रहों–पाकिस्तान और बांग्लादेश में अल्पसंख्यक–बहुसंख्यक के खेल का चरित्र वैसा नहीं है जैसा भारत में। पर पुनर्विखंडित की ओर यह राजनीति न ले जाए, यही इस अमृत महोत्सव का प्रथम और अंतिम संकल्प हो, जिसमें किसान आंदोलन में पंजाब में और सीएए. आंदोलन (शाहीन पार्क) नई दिल्ली में, विदेशी पूँजी के निवेश का संज्ञान और मुस्लिम बाहुल्य पश्चिमी उत्तर प्रदेश के कैराना प्रवृत्ति से अल्पसंख्यकों का पलायन और क्षेत्रीय, जातीय, धार्मिक (राष्ट्रीय अस्मिता विरोधी) पार्टियों की विदेशी फंडिंग और राष्ट्रविरोधी आग में अपनी राजनीतिक रोटियाँ के सेंकने में।

हमारे घर–संस्कृति में गाय, गौरैया, तुलसी, खेत, खलिहान, नदी, प्रकृति, धरती, आसमान सब अपने हैं तो उनके अतिशय दोहन के महापाप से प्रदूषण कैसे?यह विश्व ने आज समझा और जाना है, पर इस पारिवारिक साहचर्य पर भी राजनीति और स्वार्थी अकर्मण्यता की धर्म जाति बोधक वृत्ति के कारण हम और दयनीय अब नहीं रहेंगे, यह संकल्प ही अमृत महोत्सव में ले, क्योंकि भारतीयतर विश्व में देशवासियों के लिए उनकी धरती, उनके पैरों का आधार है हमारे लिए तो महतारी की गोद और जो भारतवासी इस घर संस्कृति और 'वंदे मातरम्' में गौरव बोध नहीं जीता, वह भारतवासी कहलानेयोग्य ही नहीं है। हमारी प्रगतिशीलता न तो प्रतिगामी है, ना कभी कृतघ्न हुई है–चलो इस नई भोर में धरती मैया पर टिकने को पैर रखने के पहले पैर छुए, निश्चित ही आगत दिव्य और भव्य होगा, क्योंकि–

अकृत्वा परसंतापमगत्वा खलमंदिरम्।
अनुलङ्घ्य सतां मार्गं यत्स्वल्पमपि ।।

लघुकथा :

डिजिटल करेंसी

संजय वर्मा 'दृष्टि'
मनावर, धार (म.प्र.)
मो.–9893070756

रंगीन करेंसी का अलग ही मजा किन्तु डिजिटल करेंसी आ गई तो पिछले साल पुराने 500 व 1000 की करेंसी नोट लिगल टेंडर नहीं होने के बाद नये 500 व 2000 के करेंसी नोट के चलन से भ्रष्टाचार, नकली करेंसी को रोकने आदि हेतु उपायों को चलन में लाया गया था। किन्तु इसमें कुछ व्यावहारिक परेशानी का सामना आम लोगों से लेकर खास लोगों को करना पड़ा था। लोगों ने सोचा कि धीरे–धीरे इसका भी कुछ न कुछ समाधान अवश्य निकलेगा ही। उस समय टीवी पर पुराने करेंसी नोट बदलवाने की खबरें प्रसारित हो रही थी और फेसबुक–वाटसप पर इसके त्वरित समाचार के लिए और समाधान हेतु घर–परिवार की नजरें ताजे समाचारों हेतु मानों पलकों पावड़े लिये बैठी हुई रहती थीं।

घर के अंदर से पति महोदय को पत्नी ने आवाज लगाई–नहाकर बाजार से सब्जी–भाजी ले आओ। किन्तु पति महोदय को लगा फेसबुक का चस्का। वे फेसबुक के महासागर में तैरते हुए मदमस्त हुए जा रहे थे। बच्चे पापा से स्कूल ले जाने की जिद कर रहे थे कि स्कूल में देर हो जाएगी। काम की सब तरफ से पुकार हो रही, मगर जवाब बस एक मिनट। महाशय! नाइस, वेरी नाइस की कला में माहिर हो गये थे। मित्र की संख्या में हजारों का इजाफा से वे मन ही मन खुश थे, किन्तु पड़ोसी को चाय के लिए नहीं पूछते।

इसका कारण यह भी हो सकता, उन्हें फुर्सत नहीं हो। दोस्तों में काफी ज्ञानी हो गये थे। मित्र भी सोचने लगे कि यार ये इतना ज्ञान कहाँ से लाया। इससे पहले तो ये हमारे साथ दिनभर रहता और हमारी देखी हुई फिल्म की बातें समीक्षा के रूप में सुनता रहता था। एक दिन मोहल्ले वाले मित्र ने सोचा इनके घर चलकर के पता किया जाए। ठंढ में गरमागरम चाय भी मिल जाएगी। मित्रों ने घर के बाहर लगी घंटी दो चार बार बजाई। अंदर से आवाज आई–जरा देखना कौन आया है?उन्हें उठकर देखने की भी फुर्सत नहीं मिल रही थी। दोस्तों ने कहा–यार आजकल दिखता ही नहीं क्या बात है। हमने सोचा कहीं तू बीमार तो नहीं हो गये हो, इसलिए खबर लेने और करेंसी 500 और 1000 रुपये बंद होने और नये 10, 20, 50, 100, 200, 500 और 2000 की नए रंगीन करेंसी नोट आ गये कि खबर शायद तुझे पता न हो। वर्तमान में 10, 20 के सिक्के भी आ गये है। खबर बताने और तेरी तबियत देखने आए हैं। पता नहीं दिख नहीं रहा है तो शायद खबर मालूम न हो।

घर में देखा तो भाभीजी वाटसप में अपने रिश्तेदार को त्योहारों की फोटो सेंड करने में सर झुकाए तल्लीन और कुछ बच्चे भी इसी में लगे थे। अब ऐसा लग रहा था कि फेसबुक और वाटसप में जैसे मुकाबला हो रहा हो। घर के काम का समय मानो विलुप्तता की कगार पर जा खड़ा हुआ हो। सब जगह चार्जर लटक रहे थे। मोबाईल यदि कहीं भूल से रख दिया और नहीं मिला तो ऐसा लगता जैसे कोई अपना लापता हो गया हो। दिमाग में चिड़चिड़ापन, हिदायतें, उभरकर आना मानो रोज की आदत बन गई हो। चार्जिंग करने के लिए घर में ही होड़ होने लगी। बैटरी लो हो जाने से सब एक दूसरे को सबूत पेश करने लगे।

वाकई इलेक्ट्रॉनिक युग में प्रगति हुई, किन्तु लोग रिश्तों और दिनचर्या में कम ध्यान देकर अधिक समय और आभासी दुनिया के फेसबुक, वाटसप और मोबाईल पर अन्य ऐप केन्द्रित करने लगे हैं। पहले 500 और 1000 हजार के करेंसी बदलवाने की चिंता थी और अब नये मिलनेवाले रंगीन करेंसी नोटों की खुशी थी। शुरू–शुरू में गाँव–शहर में करेंसी बदलवाने को ले जाते हुजूम से बैंक और डाकघर चर्चित हुए, वहीं कोई परिचित किसी से यही पूछता की आप कहाँ हो?तो एक ही पता बताता था कि बैंक या डाकघर में हूँ। वर्तमान में नई रंगीन करेंसी वाले नोटों की रंगीन माला पहनकर दूल्हा खुश है। किन्तु कोरोना गाइड लाइन के पालन में प्रोसेशन निकालते समय संख्या सीमित होने से नोटों को नाचनेवाले पर घूमाकर बैंड बाजे वालों को दिया जाने में कमी अवश्य आई। साथ ही 2000 के छुट्टे हेतु थोड़ी बहुत परेशानी भी सामने आई। खैर कुल मिलाकर रंगीन करेंसी को पर्स में रखने से पर्स का सौंदर्य अवश्य निखर गया। किन्तु डिजिटल करेंसी आने से हवा जोर–शोर से होने पर पर्स अभी से उदास है। शादी में नोट नाचनेवालों पर उतारनेवाले ही हवा सुनकर उदास है। मेहमान जाते समय बच्चों के हाथ में स्नेह स्वरूप पैसे देने का चलन से डिजिटल करेंसी होने की हवा से बच्चे नगदी न पाकर उदास रहेंगे।

आलेख /

छायावादी युग में एक प्रमुख स्तंभ रहीं महादेवीजी

डॉ. मंजरी पांडेय
(राष्ट्रपति सम्मान प्राप्त) सारनाथ
वाराणसी, 9973544350

यह सत्य है कि हर रचनाकार का अपना एक लोक होता है, जिसमें वह विचरता है। वही वैचारिक पृष्ठभूमि तैयार करता है। भाव गढ़ता है, उकेरता है, शब्दों का गुंफन करता है, फिर रवानगी देता है, जिससे उसमें एक प्रवाह बनता है। यह प्रवाह सुख–दुख, आक्रोश, शृंगार कुछ भी हो सकता है। पहला अवगाहन वह स्वयं लगाता है, फिर इसी प्रवाह में पाठक डुबता–उतराता, अवगाहन करता है। रचनाकार का आकलन होता है। जितने लोग इस प्रवाह में निमज्जित अवतरित हो, वह कृति और कृतिकार उतना सफल माना जाता है। रचनाकार का आभामंडल निर्मित होता है। महादेवी, तो महादेवी थी, कोई दूसरी महादेवी अबतक न हुई।

महादेवी जी दैवीय कृपा का अंश थीं। तभी बाल्यावस्था से ही धर्म, आस्था, संस्कार से बँधने लगीं। कालान्तर में वही रुचि बन गई। परिणामस्वरूप अधिकांश कविताओं में नारीजन्य पीड़ा, विरह वेदना, शृंगार, संयोग–वियोग सब कुछ देखने को मिलता है। यह उनका रचना, आलोक का घेरा भी उनका ही है। जैसा कि हम जानते हैं कि उनका बाल–विवाह हुआ, जो सफल न हो सका। लिहाजा एक बदसूरत अध्याय की तरह उनके जीवन संग हमेशा के लिये जुड़ गया। यह विडम्बना ही थी। सर्वथा अप्रत्याशित, परन्तु त्रासदी तो थी, झेलना ही हुआ। पहले पूरे परिवार को झेलना पड़ा होगा। सयानी हो जाने पर महादेवी जी को भी कितना कुछ सोचना, समझना, झेलना हुआ होगा। सांस्कारिक परिवार था, अतः शुरुआती संयम–नियम, अनुशासन उनके जीवन में बड़ा काम आया।

माँ धार्मिक महिला थी। पूजा–पाठ नियम संयम से रहना। इसी प्रभाव में महादेवीजी बचपन से ही सूर, तुलसी और मीरा के पद सुना करती थी। गुनगुनाती भी रही होगी। कह सकते हैं–भक्ति और वियोग शृंगार बाल्यकाल से उन्हें मिला। मीरा जैसी ही भक्ति में रम गई। यही कब साहित्य बन गया। उन्हें भी आभास न हुआ होगा। सात वर्ष की अवस्था में पहली कविता लिखी। यानी उनकी कविताओं को संस्कार मिला बचपन से ही। उन्हें आधुनिक काल की मीरा इसलिए कहते हैं, क्योंकि मीरा की भक्ति, प्रेम, ईश्वरीय चिंतन सब वैसा ही रहा पर, महादेवी जी में नारी समुदाय के प्रति चेतना, चिंतन भी बहुत है। देश दुनिया में सरोकार है। घर, परिवार, संसार से जुड़ीं रहीं, जिसका मीराबाई में सर्वथा अभाव रहा। उन्हें तो कण–कण में गिरिधर से इतर कुछ नजर नहीं आता था। इसी संस्कार के कारण ईश्वर विषयक प्रेम की अनुभूति उनकी प्रायः हर रचनाओं में दिखती है।

आत्मा–परमात्मा का मिलन–विरह तथा प्रकृति के व्यापारों की छाया स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होती है। वेदना और पीड़ा उनकी कविताओं के प्राण तत्व ही हैं, जो प्रायः हर रचनाओं में आंशिक अथवा पूर्ण रूप से विद्यमान रहते हैं और उनके समस्त काव्य को वेदनामय कर देते हैं। उनपर एकांतवाद का आरोप भी लगता रहा है। विशेषकर सांध्यगीत काव्यसंग्रह में संकलित निम्नलिखित कविता की पंक्तियों का बहुधा उल्लेख होता है–

''मैं नीर भरी दुख की बदली।''

जिसके लिए उन्हें निराशावादी, पीड़ा, अवसाद की कवयित्री भी कहा गया। पर इसी कविता के दूसरे बंद में उत्साह देखें–

''मेरा पग पग संगीत भरा
श्वासों में स्वप्न पराग झरा
नभ के नव रंग बुनते दूकुल
छाया में मलय बयार पली।''

वास्तव में उन्होंने विशुद्ध रूप से अपनी भावनाएँ रखी हैं। माना कि उनकी अधिकांश रचनाएँ आत्मकेंद्रित हो रही हैं। पर संवेदना की पराकाष्ठा भी है, जिसके कारण पाठक स्वाभाविक अनुभूति में उतर जाता है। जहाँ महादेवी वर्मा जी के कथ्य के साथ तादात्म्य स्थापित होता है। एकाकार हो रसानुभूति करता है, उकताता नहीं है। उन्होंने स्वयं जिस अन्तर्पीड़ा को भोगा, सहा, उसे प्रेम में ढालकर पी गई और विरह रस में भी मगन हो उल्लास मनाती है। यही सीख भी महिला समाज को देती है कि कभी न घबराना न हार मानना है। कविता के अंत में नारी जीवन का सत्य उद्घाटित करती है। बताती हैं–नारी समुदाय को कि हताश निराश होने की आवश्यकता नहीं। इसमें दैन्यावस्था नहीं, उसकी महानता को दर्शाया है। नीचे दी गई पंक्ति भी कुछ ऐसा ही बोध कराती है–

''नारी तेरी यही कहानी
आँचल में दूध और आँखों में पानी।''

ये तो हर नारी का नारीत्व है। कुछ लोग अन्यथा अर्थ लगाते हैं कि स्त्री को बिचारी अवस्था में दर्शाया गया है। परन्तु ऐसा नहीं, नारी के उस सामर्थ्य, संस्कारगत कोमलता को दर्शाने की कोशिश है, जिसमें विषम परिस्थितियों में भी नारी ही सब कुछ सहकर भी सबको, घर–परिवार, समाज को मजबूती से थामे रखती है। आँचल में कुल, संसार, मर्यादा, हृदय में पीड़ा का आगार ये तो उसका अपना स्वाभाविक स्वरूप है, जिसके कारण ही वेदवाक्य कहे गये–

''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।''

इतना ऊँचा स्थान दिया गया। इससे विलग होने की क्यों सोचना?अपनी मर्यादा को क्यों खोना?कितनी भी आधुनिक हो जाए, नारी पर यह शाश्वत सत्य है कि नारी त्याग और ममता की प्रतिमूर्ति है। इसे अधिकतर समझ लें तो इसे निभाने में भी सुख और आनंद आएगा। महादेवीजी ने ये समझ लिया था। उन्होंने इसी कविता के अंतिम बंद में कहा–

''विस्तृत नभ का कोई कोना
मेरा न कभी अपना होना
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली।''

हर नारी जीवन की क्या यही गाथा नहीं है?तो क्या वह दुखित,

पीड़ित हो रो–रोकर जान दे दे या हिम्मत से जीवन का गरल पीकर शान से चले। महादेवी जी शान से मान–सम्मान के साथ सर उठाकर जीने की पक्षधर है।

छायावादी चारो कवियों में से महादेवीजी के लिए कहा जा सकता है कि वे उस काल की रचनाओं में प्राण डालती हैं। यानी भावनात्मकता को समृद्ध करती हैं। इसे निराशावादी कैसे कहा जा सकता है? मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि महादेवीजी स्वयं आत्मानुभूति अपनी रचनाओं में रखकर स्वयं जैसे मुक्त हो जाती हैं, हल्की हो जाती हैं। परिस्थितियों से संघर्ष करने की उनमें ऊर्जा आ जाती है। जैसे कहा गया है कि दुख बाँटने से व्यक्ति का अपना दु:ख–दर्द हल्का होता है। तभी तो वह जीवनभर की पीड़ा का ढाल बना सकी।

प्रगतिशील नारियों के लिए वह आदर्श व्यक्तित्व हैं। नारियों के लिए आजीवन समर्पित रहीं। यहाँ कृष्ण की मीरा से अलग हैं महादेवी जी। सामाजिक सरोकारों से भी इत्तेफाक रखती हैं। प्रयोग महिला विद्यापीठ के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। महिला शिक्षा के क्षेत्र में यह क्रांतिकारी कदम था। वो स्वयं कुलपति भी रहीं। महिलाओं की प्रमुख पत्रिका 'चाँद' का संपादन, प्रकाशन किया। भारत में महिला कवि सम्मेलन की स्थापना कीं। लगभग सभी राष्ट्रीय सम्मानों से नवाजी गयीं। गाँधीजी से प्रभावित होकर स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लिया। यानी नारियों के उत्थान के लिए बहुत काम किये स्वयं भी मिसाल बनीं। ये अदम्य ऊर्जा अपनी रचनाओं से प्राप्त किया। इस तरह से उनपर लगनेवाला आरोप तो एक ओर खारिज हो जाता है।

हाँ, एकान्तवाद उनका अपना है। अपनी अनुभूतियों का भंडार, अपने आचार–विचार और उसमें सृजन। उनका रचनालोक इतना विस्तृत है, जिसमें बाल्यकाल में हुए बालविवाह की विडंबना के बावजूद अपने को सँभाला। पूरा जीवन अंधकारमय हो जाने से बचाया। उनकी अनुभूति, उनकी रचनाएँ पतवार का काम करती हैं, जिसके सहारे न केवल अपना जीवन व्यतीत किया, वरन् सशक्त नारी के रूप में उभरकर आती हैं। कितनों की प्रेरणास्रोत हैं। प्रथम काव्य संग्रह 'नीहार' में कविताओं संग एकमात्रा गीत है–

''जो तुम आ जाते एक बार

तो क्या...? क्या होता? पता नहीं, पर जाने क्या होता? रहस्य समेटे नारी मन की अकथनीय वेदना की ओर इशारा है। एक वाक्य पूरा वर्णन है। पूरे कथ्य को समझा जा सकता है। रहस्यवादी रचनाकार की ख्याति भी है महादेवीजी की। ऐसी रचनाओं में अपनी गरिमा के साथ आत्मनिवेदन है, विरहजनित व्याकुलता के साथ संयोग की तीव्र लालसा भी छिपी है। पूर्ण आशावादी है। 'नीरजा' काव्यसंग्रह में–'बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ' शीर्षक कविता का एक बंद देखें–

''नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हूँ
शलभ जिसके प्राण में वह ठिठुर दीपक हूँ
फूल को उर में छिपाये विकल बुलबुल हूँ
एक होकर दूर तन से छाँछ वह चल हूँ,
दूर तुमसे हूँ अखण्ड सुहागिनी भी हूँ।''

कदाचित् मन विचलित होता है, पर आशा और विश्वास कम नहीं होता। फूल से कोमल विचार हृदय में छिपे हैं। मगर व्याकुलता अपने अदृश्य प्रियतम से मिलने को भी है। यही नहीं, जो मान लिया, ठान लिया, वहाँ दृढ़प्रतिज्ञ है। जैसे मीरा कहती है–''मेरो तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।'' वैसी ही महादेवी जी कहती हैं–''दूर हूँ तो क्या मैं अखंड सुहागिनी हूँ।'' मेरा सुहाग है वो अदृश्य प्रियतम। उसे कौन छीन सकता है? यह लौकिक विवाहादि सब तुच्छ है। उनका प्रेम तो मीरा जैसा है। एक उस अदृश्य अलौकिक सत्ता के अलावा कुछ दिखता न भाता है। महादेवीजी सकारात्मक सोच के साथ खड़ी होती है, तब ये पंक्तियाँ कहती हैं–

''फिर विकल हैं प्राण मेरे

तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देख लूँ और क्या है?

जा रहे जिस पंथ से युगकल्प उसका छोर क्या है?

क्यों मुझे प्राचीर बनकर आज मेरे श्वास घेरे?''

ईश्वर के प्रति अत्यन्त आस्थावान महादेवीजी का अनुभूतिलोक वस्तुत: अतिविस्तृत और ऐकांतिक था। यानी वो और उनकी अनुभूतियों के अतिरिक्त किसी का प्रवेश नहीं था। इसीलिए वो आत्मकेंद्रित होकर बोलती हैं। हालाँकि कहती वो जन–जन की बात, जन–जन के लिए है। ये अनुभूतियाँ ही उनका संसार, जीने का आधार है। यही जमापूँजी है, जिसे लेखनी के माध्यम से खर्चा भी की है, बाँटा भी है और इसी से अपनी रचना का संसार निर्मित किया, सजाया, सँवारा, जिसके आसपास न कोई अबतक पहुँच पाया है, न जल्दी कोई उम्मीद दिखाई दे रही है।

परिवेश को देखते हुए ये कहा जा सकता है कि कविता का संस्कार और आध्यात्मिक आधार परिवार की देन है। इनके नाना जी ब्रजभाषा में लिखते थे। महादेवीजी ने भी शुरुआत ब्रजभाषा में लेखन के साथ किया। ब्रजभाषा से जुड़ना भी माना अध्यात्म की ओर एक कदम ही था। कृष्णस्वरूप को मन मंदिर में बिठाने का संयोग ही बना होगा। बाद में समकालीन रचनाकारों ने खड़ी भाषा में लिखने के लिए प्रेरित किया। पर एक विशेषता इनके लेखन की ये भी द्रष्टव्य है कि काव्य की जो संवेदना, वेदना एकदम छलककर आती है, वह गद्य में नहीं दिखती। यहाँ यथार्थ स्पष्ट है। निबंध, ललित निबंध, लेख, संस्मरण सब कुछ उत्कृष्ट लेखन का नमूना है।

इस तरह महादेवीजी का रचना आलोक, अध्यात्म और रहस्य से भरा हुआ है। संस्कृतनिष्ठ भाषा है। भारतीय संस्कृति के मानक पर खरा उतरता है। जो चाहे उनके साहित्य में अपने मनोनुकूल तथ्य कथ्य प्राप्त कर सकता है, पर प्यास फिर भी बनी रहेगी। ऐसा आकर्षण है। उनके साहित्य में एक बात और महत्वपूर्ण है। वह एक चित्रकार तो है। चित्र भी बनाए हैं उन्होंने। परन्तु प्रतीकों के माध्यम से भी अपनी बात रखी हैं। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि इनका प्राय: हर जगह प्रयुक्त होनेवाला प्रतीक दीपक है। बचपन में सात वर्ष की उम्र में जो कविता लिखी। यह दीपक पर ही केन्द्रित थी। आगे अनेक रचनाओं में दीपक प्रयुक्त हुआ है। संभव है ये दीपक उनका आध्यात्मिक, सर्वव्यापी ईश्वर ही है। उन्हीं की पंक्तियों के साथ अपनी लेखनी को विराम दे रही हूँ–

''उड़ उड़कर जो धूल करेगी

मेघों का नभ में अभिषेक

अमिट रहेगी उसके अंचल

में मेरी पीड़ा की रेख।''

संस्मरण/

सुसंभाव्य की संरक्षिका मेरी मम्मी

जेन्नी शबनम
दिल्ली
मो.–9810743437

श्रीमती प्रतिभा सिन्हा (मम्मी) ने एक दिन मुझसे कहा–''मेरे जीवन को तुमसे ज्यादा कोई नहीं जानता–समझता है, मेरे जीवन के बारे में कुछ लिखो।'' मैंने हँसकर कहा–''तुम्हारी जिंदगी पर तो फिल्म बन सकती है मम्मी! काश, किसी को हम जानते तो कहते कि कहानी लिखे और सिनेमा बनाए। कम–से–कम उस एक दृश्य में तो तुमको जरूर दिखाये, जिस दिन तुम्हारा रिटायरमेंट हुआ, तुम्हारे सहकर्मी और छात्राएँ कैसे रो रही थीं। तुम्हारी अधेड़ावस्था का चरित्र मैंने और युवावस्था का चरित्र खुशी (मेरी बेटी) ने निभाया।'' मम्मी मेरी बातों पर खूब हँसी और कहा–'वाह! यह तो बहुत अच्छा आइडिया है, लेकिन मेरे ऊपर कोई क्यों सिनेमा बनाएगा?जो संभव है, वह सोचो न।तुम इतना अच्छा लिखती हो, मेरे बारे में तुम जो भी सोचती हो, वह सब लिखो।'' मैंने कहा–''मम्मी! तुम मानसिक पीड़ा में जीती रही हो। हम लिखेंगे तो सारा सच ही लिखेंगे, तुम पढ़ोगी और बीते कष्टप्रद दिनों को याद करोगी और रोज रोती रहोगी।'' मम्मी के जीवन के हर पहलू, उतार चढ़ाव, सुख–दु:ख, अच्छे–बुरे वक्त से मैं पूर्णत: वाकिफ हूँ।

3–4 वर्ष की उम्र से ही मुझमें उम्र से ज्यादा समझ थी। मैं बहुत गंभीर और संकोची स्वभाव की थी।उस उम्र से ही हर कार्य को मैं अपने तरीके से सोचकर बहुत स्थिर और तल्लीनता से करती थी। भले ही समय ज्यादा लग जाए।हड़बड़ी में किसी तरह कार्य को पूरा करना मेरा स्वभाव नहीं है।जो भी कार्य करूँ, मेरे मुताबिक परफेक्ट होना चाहिए, अन्यथा मैं करती ही नहीं हूँ। इस आदत के कारण मैंने पाया कम, गँवाया ज्यादा है।पापा की मृत्यु के बाद जैसे अचानक मैं वयस्क हो गयी और हर परिस्थिति को समझकर विश्लेषण करने लगी। यही वजह है कि सही समय में मम्मी पर मैं कुछ भी लिख न सकी।जब भी थोड़ा लिखती, भावुक हो जाती और डिलिट कर देती थी। मैं नहीं चाहती थी कि मम्मी को अपने दुखद पलों को फिर से याद दिलाऊँ।मम्मी को मानसिक और भावनात्मक पीड़ा इतनी ज्यादा मिली की मैं लिखने की हिम्मत नहीं जुटा पाती थी।मेरी कुछ कविताएँ जो मम्मी को अपने जीवन से जुड़ी हुई लगतीं, बार–बार पढ़कर खूब रोती थीं; विशेषकर वृद्धावस्था और अकेलेपन की रचनाएँ।मम्मी हमेशा कहतीं कि '''तुम तबसे लिखती हो, हमको पता कैसे नहीं चला?मेरी इस परिस्थिति में लोग क्या महसूस करते हैं, तुम कैसे इतना सोचकर लिख लेती हो?'' मैं मुस्कुराकर कहती–''पता नहीं, मम्मी! कैसे लिख लेती हूँ मैं?पर सोचो, माँ को नहीं पता कि बेटी लिखती है, लेकिन बेटी को माँ का सब कुछ पता है।'' मैं जब भी भागलपुर जाती और मम्मी से मिलती थी, तो हँसना, बोलना, गाना, खाना जारी रहता था।कोई भी दुखद बात हो जाती तो मम्मी अपने असहाय होने पर बहुत रोती थीं।जीवन का बीता हर एक पल मम्मी को हमेशा याद रहा।

प्रतिभा सिन्हा महज मेरी माँ का नाम नहीं, बल्कि ऐसी शख्सियत का नाम है, जिनकी पहचान आदर्श शिक्षक, कर्मठ प्राचार्य और सामाजिक सरोकारों से जुड़े संगठनों में एक कर्मठ नेत्री के रूप में है। जबसे मैंने होश सँभाला उन्हें घर, बच्चे, परिवार, विद्यालय और सामाजिक कार्यों में व्यस्त देखा है। मम्मी के जीवन के उतार–चढ़ाव में सुख–दु:ख, संघर्ष, सम्मान, अपमान, हिम्मत सब शामिल रहा है। नौकरी के साथ–साथ सामाजिक सरोकारों से संबंधित संगठनों से सम्बद्धता, हर संभव लोगों की सहायता करना चाहे वह आर्थिक हो या पारिवारिक, भागलपुर के सुलह केन्द्र में सलाहकार इत्यादि न जाने कितने कार्य हैं, जो मम्मी लगातार करती रहीं।

2010 से उनके पैरों में बहुत तकलीफ रहने लगी और धीरे–धीरे चलने में असमर्थ होती गयीं।इसके बावजूद 2017 तक उनके किसी भी कार्य में अवरोध नहीं आया, वे सक्रिय रहीं।2018 में मम्मी दिल्ली आई थीं, यहाँ दो बार हार्टअटैक आया।इसके बाद वे धीरे–धीरे कमजोर होती चली गयीं।देहान्त के दो साल पहले से चलने में असमर्थ और अपनी हर दिनचर्या के लिए दूसरों पर निर्भर हो गयी थीं।हर दूसरे–तीसरे महीने उनका सुगर और सोडियम कम हो जाता था।अस्पताल में भर्ती होना, फिर 10–12 दिन में ठीक होकर घर आना, मानो यह उनके जीवन का हिस्सा बन गया।एक बार लगातार 2 महीने तक अस्पताल में रहना पड़ा।ऐसे में मम्मी जीवन से निराश हो चुकी थीं।मैं, मेरा भाई, मम्मी के मित्र, सहकर्मी, छात्र–छात्राएँ, रिश्तेदारों आदि से मिलने पर मम्मी जैसे खिल जाती और अपनी सारी पीड़ा भूल जाती थी।

मम्मी अपने जीवन–संघर्ष से हारने लगतीं या किसी घटना के कारण अवसाद में होती, तो मैं अक्सर कहती थी–''मम्मी! तुम अपने मन की हो, कोई तुमसे न सवाल करेगा, न किसी को जवाब देने के लिए बाध्य हो। कभी किसी से कुछ नहीं ली तुम, जीवनभर लोगों की सहायता ही करती रही हो। तुम्हारे बच्चे स्थापित हैं, सबकी फिक्र छोड़ो, सिर्फ अपनी फिक्र करो। तुम्हारा अपना पैसा है मेहनत से कमाया हुआ, भरपूर जियो, खूब घूमो, खूब आराम से जीवन जियो, जो मन में आए करो।'' परन्तु मम्मी ने कभी भी बेफिक्र होकर जीवन नहीं जिया।उस समय की मध्यम वर्गीय परिवेश की माँ, विशेषकर एकल महिला अपने से ज्यादा अपने बच्चों के लिए फिक्रमंद रहती थीं।मेरी फिक्र में मम्मी ने स्वास्थ्य को और भी ज्यादा प्रभावित किया।उच्च शिक्षा लेकर भी मैं आर्थिक रूप से निर्भर हूँ, इस बात का अफसोस मुझे है और मम्मी भी करती रहीं। सच है कि परिस्थितियाँ कब बदल जाए कोई नहीं जानता।इस बात को लेकर मम्मी खुश थी कि मैं लेखिका और कवयित्री बन गई हूँ। मम्मी के सामने मेरी एक किताब प्रकाशित हो गयी थी, जो मम्मी के पास थी। दूसरी किताब प्रकाशित हुई, लेकिन मम्मी को दे नहीं सकी। मेरी तीसरी किताब प्रकाशित हुई, जिसे मैं मम्मी को समर्पित की हूँ।

मैं कॉलेज में पढ़ती थी।एक दिन मैंने मम्मी से कहा–''तुम दूसरी शादी क्यों नहीं की?कोई तो रहता तुम्हारे साथ, जब तुम बहुत बूढ़ी हो जाती। दादी उम्रदराज हो गयी है, शादी के बाद हम भी चले जायेंगे, तुम अकेली पड़ जाओगी।'' दादी यह सुनकर हँसने लगी। मम्मी ने कहा–''क्या बोलती हो, कुछ भी अनाप–शनाप सोचती और बोलती हो। दूसरी शादी क्यों करते भला?अगर मेरी दूसरी शादी होती तो क्या तुम्हारी शादी हो पाएगी?तुम्हारी शादी के लिए अभी कितने ऑफर आते हैं, पर कोई नहीं चाहेगा कि ऐसी लड़की से शादी हो, जिसकी विधवा माँ ने दूसरी शादी की हो।मेरे पास नौकरी है, ढेरों काम है, तुम्हारी दादी है, तुम दोनों बच्चे हो, शादी का औचित्य क्या था?'' मम्मी के जवाब से मैं संतुष्ट नहीं थी।मैं सचमुच चाहती थी कि मम्मी के जीवन में रंग हो। मम्मी का रंगहीन साड़ी पहनना, बिन्दी–चूड़ी नहीं पहनना मुझे बहुत अखरता था।पहले वे काजल लगाती थीं और कान में बड़ी–सी

बाली पहनती थीं, वह भी पापा के देहांत के बाद बन्द कर दिया। मम्मी ने दिवाली–होली सब कुछ रस्म के तौर पर निभाना शुरू कर दिया, हालाँकि पापा कोई भी त्योहार नहीं मनाते थे, पर हमें रोकते भी नहीं थे।

मैं कम बोलती और शांत रहती थी, लेकिन मुझे खुश रहना पसंद था। मैं होली, दिवाली, ईद, नया साल, क्रिसमस, जन्मदिन, स्वतंत्रता दिवस, गणतंत्र दिवस या अन्य कोई खास दिन खूब शौक से मनाती थी। मम्मी को लेकर जबरदस्ती सिनेमा देखने जाती। होली में दादी–मम्मी और नाना को रँग देती थी। दादी मम्मी गुस्सा होतीं, पर मैं कहाँ सुनती थी किसी की। मम्मी को जबदस्ती रंगीन साड़ी पहनाती थी। मेरे अनुसार चूड़ी, बिन्दी, बिछिया आदि सुहाग की निशानी नहीं, बल्कि सौंदर्य प्रसाधन है। पर मम्मी नहीं ही पहनी कभी। मुझे वह पल याद है, जब पापा की मृत्यु हुई, मम्मी की स्थिति बहुत खराब हो गयी, उनको नींद की सूई दी गयी थी, उसी अर्धबेहोशी में किसी स्त्री ने मम्मी के हाथ में ही काँच की सभी चूड़ियाँ तोड़ दी थीं और नहलाकर सफेद साडी पहना दी। मुझे बेहद गुस्सा आया, पर उस समय मेरी कौन सुनता। हमारे समाज और संस्कृति ने मम्मी को विधवापन झेलने पर मजबूर किया। हालाँकि मम्मी मेरी बातों को समझती थीं, लेकिन उनके मन में सदियों का बैठा मानसिक अवरोध था कि 'लोग क्या कहेंगे?' मैं कहती थी कि जिसे जो कहना है, कहने दो, अपने मन का करो। परन्तु मम्मी ने न कभी बिन्दी लगाई, न रंगीन काँच की चूड़ियाँ पहनीं। 1963 में मेरे दादा के देहांत के बाद से दादी ने भी कभी सफेद के अलावा किसी और रंग को नहीं अपनाया। मुझे यह सब बेहद क्रूर लगता है।

मम्मी का पूरा नाम प्रतिभा सिन्हा और घर का नाम सुशीला है। विवाहोपरांत भी प्रतिभा सिन्हा ही नाम रहा, क्योंकि मेरे पापा इस बात के विरुद्ध थे कि शादी के बाद स्त्री का नाम बदला जाय या पति का उपनाम जोड़ा जाए। मम्मी का जन्म बिहार के सीतामढ़ी जिला के सुप्पी ब्लॉक के सोनौल सुब्बा गाँव में एक शिक्षक परिवार में हुआ था और उनकी माँ रामधारी देवी गृहिणी थीं। बड़ी बहन उर्मिला देवी, गृहिणी और बहनोई भूपेन्द्र नारायण प्रसाद रेलवे में कार्यरत थे। अवकाश–प्राप्ति के बाद मोतिहारी में रहने लगे। अब वे दोनों इस संसार में नहीं हैं। बड़े भाई श्रीकृष्णदेव नारायण सिन्हा ऑडिटर थे और भाभी श्रीमती राममणि सिन्हा स्कूल में शिक्षिका थीं। वे मोतिहारी में रहते हैं। मम्मी के दो मामा थे, जो मोतिहारी में रहते थे। बड़े मामा धर्मदेव नारायण सिन्हा जज थे तथा छोटे मामा विष्णुदेव नारायण सिन्हा वकील और स्वतंत्रता सेनानी थे। मम्मी की सातवीं कक्षा तक की शिक्षा गाँव से हुई। आगे की पढ़ाई के लिए मम्मी अपने बड़े मामा जो उन दिनों बेगुसराय में जिला जज थे, के घर रहने आ गयीं और वहीं से 1961 में मैट्रिक किया। मेरे मामा की पोस्टिंग 1959 में दरभंगा में हुई और उनकी शादी 1960 में हुई। मम्मी अपने भाई–भाभी के पास रहने आ गयी और दरभंगा विश्वविद्यालय से 1962 में प्री यूनिवर्सिटी (उस समय का इंटरमीडिएट) किया।

दरभंगा विश्वविद्यालय में मम्मी बी.ए. पार्ट 1 में पढ़ती थी, तब 3 जून, 1962 को दरभंगा से शादी हुई। हम दोनों भाई बहन के जन्म के कारण उनकी पढ़ाई में एक साल का व्यवधान आया और फिर 1967 में टी. एन.बी कॉलेज भागलपुर से बी.ए. ऑनर्स किया। मेरे पापा डॉ. कृष्णमोहन प्रसाद अपनी पढ़ाई के दिनों में अपने गाँव कोठिया (अब शिवहर जिला) के नजदीक अदौरी स्कूल में करीब एक साल शिक्षक रहे। 1961 ई0 में गिरिडीह कॉलेज, राँची विश्वविद्यालय में लेक्चरर बने और 1963 में भागलपुर विश्वविद्यालय में राजनीतिशास्त्र विभाग के प्रोफेसर बने। मम्मी भागलपुर विश्वविद्यालय से 1969 में राजनीतिशास्त्र से एम.ए. की। पापा उसी विभाग में शिक्षक और मम्मी उनकी छात्रा। मैं मम्मी को छोड़ती नहीं थी, चाहे मम्मी को पढ़ने जाना हो या मीटिंग हो, हालाँकि हम दोनों भाई–बहन की देखरेख के लिए दो लोग रहते थे। मैं मम्मी को ज्यादा दिक्कत देती थी, परन्तु मेरे सिद्धांतवादी पापा ने मम्मी को सहूलियत नहीं दी। पापा के विभागाध्यक्ष ने पापा से कहा भी कि मम्मी क्लास न करें और पापा घर में नोट्स दे दें। परन्तु पापा के लिए सभी छात्र एक बराबर हैं, किसी एक को सुविधा क्यों? मम्मी पढ़ने के लिए अक्सर अपनी मित्र श्रीमती लक्ष्मी गुप्ता, जिनका घर कोतवाली चौक पर है, के घर चली जाती थीं। मम्मी ने 1971 में टी.एन.बी. लॉ कॉलेज से एल.एल.बी. किया। 1974 में राजकीय शिक्षण प्रशिक्षण महाविद्यालय, भागलपुर से बी.एड. और 1982 में एम.एड. किया।

पापा के सहयोग से मम्मी ने मार्च 1967 में भागलपुर में गाँधी शान्ति प्रतिष्ठान केन्द्र की स्थापना की और उसकी फाउंडर सेक्रेटरी जिसे चीफ वर्कर कहते हैं, बनी। 1972 में गाँधी शांति प्रतिष्ठान केन्द्र के सचिव–पद से इस्तीफा दे दी और भारतीय कम्यूनिष्ट पार्टी में शामिल हो गयीं। 22 नवम्बर, 1972 को बिहार महिला समाज से जुड़ी और भागलपुर शाखा की सचिव बनीं। वे बिहार महिला समाज के राज्य सचिव रहीं और छः बार भारतीय महिला फेडरेशन की राष्ट्रीय परिषद् की सदस्या रहीं। आनंद मोहन राय, जो हिन्दी फौज के सेक्रेटरी जनरल थे और शारदा देवी वेदालंकार, जो सुंदरवती महिला कॉलेज की संस्थापक प्राचार्य थीं, के सहयोग से 23 दिसम्बर 1975 को टी.एन.बी. कॉलेजिएट स्कूल में शिक्षक के रूप में मम्मी की बहाली हुई। उसके बाद 1988 में बिहार सेवा आयोग द्वारा प्राचार्य के पद पर नियुक्ति हुई और प्रोजेक्ट गर्ल्स हाई स्कूल धौनी, बाँका में पदस्थापित हुईं। बीच में एक साल के लिए नाथनगर गर्ल्स हाई स्कूल में पोस्टिंग हुई। फिर मोक्षदा बालिका इंटर स्कूल, भागलपुर में 12.1.2004 से 31.12.2008 तक प्राचार्य रहीं और वहीं से रिटायर हुईं। मोक्षदा स्कूल के सहकर्मी श्रीदयानन्द जायसवाल, जो बाद में मोक्षदा के प्राचार्य बने, के संपादन में 2013 में संभाव्य नाम से हिन्दी पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ। 2015 में पत्रिका का नाम बदलकर 'सुसंभाव्य' किया गया तथा मम्मी मृत्युपर्यन्त पत्रिका की संरक्षिका रहीं। सेवानिवृत्ति के बाद श्रीदयानंद जायसवाल जी का सहयोग हमेशा मिलते रहता तथा उनका आना–जाना और देखरेख भी होता रहा। भारतीय कम्युनिष्ट पार्टी, महिला समाज, गाँधी शान्ति प्रतिष्ठान केन्द्र, भारतीय जननाट्य संघ, राष्ट्र सेवा दल, परिधि शिक्षक संघ, पेंशनर समाज, कानूनी सहायता–सुलह केन्द्र आदि ढेरों संगठनों से मम्मी आजीवन जुड़ी रहीं और 2017 तक पूर्ण सक्रिय रहीं।

मम्मी को याद करने में मम्मी–पापा के विवाह की चर्चा न हो, यह कहाँ मुमकिन। मम्मी–पापा की शादी बहुत अनोखी थी। पापा का घर कोठियाँ धरमपुर धरमाग गाँव, जो शिवहर जिला (पहले मुजफ्फरपुर, फिर सीतामढ़ी जिला मुख्यालय से लगभग दो किलोमीटर दूर) है। समीप के गाँव पुरनहरिया के डुमर गाँव के किसी समृद्ध परिवार से शादी के लिए पापा का बहुत दबाव था। यहाँ तक कि वे लोग पीएच.डी. का खर्च देने को तैयार थे। सोनौल सुब्बा से सटा हुआ एक गाँव है घरबारा, जहाँ मम्मी के रिश्ते के मुनि चाचा रहते थे, जो पापा के रिश्ते में भी कुछ थे। उन्होंने मेरे मामा को शादी की बात करने भेजा। पापा अपने पिता और घर के किसी भी सदस्य को मामा से बात करने नहीं दिये। वे सारा दिन मामा के साथ बिताए और अपने सिद्धांत और शर्तों के बारे में स्पष्ट बता दिये। पापा का परिवार परंपरावादी है, तो उन्हें आशंका थी कि घरवाले कुंडली मिलाएँगे, मुहूर्त देखेंगे, पारंपरिक शादी चाहेंगे। पापा के

रिश्ते में भतीजा और मम्मी के रिश्ते में भाई श्रीराजकमल शिरोमणि, जो बाद में अँगरेजी के प्रोफेसर बने, के साथ मम्मी को दरभंगा के सिनेमा हॉल में भेजा गया। पापा ने मम्मी को दूर से देखा, मम्मी को इस बात की जानकारी नहीं दी गई। एक महीने बाद पापा ने रजिस्ट्री चिट्ठी भेजकर मामा को बुलाकर कहा कि अगर उनमें मेरिट हो और वे आगे पढ़ेंगी तो वे शादी के लिए तैयार हैं, लेकिन शादी उनके शर्त के मुताबिक होगी। पापा द्वारा चयनित राजनीतिशास्त्र, गृहविज्ञान और अँग्रेजी के पाँच प्रश्नों का उत्तर उनके सामने लिखे और लिफाफे में चिपकाकर दे दिया। मामा ने शादी की सभी शर्तों को मान लिया। मामा ने चुपचाप पापा की कुंडली बनवाई और कुंडली मिलान कराया, जिसके अनुसार 36 में से 32 गुण मिल गये थे।

शादी की शर्तें मुख्यतः ये थीं कि मेरे दादा शादी में नहीं जायेंगे, खादी की एक साड़ी और सिन्दूर की पुड़िया पापा लेकर जायेंगे, दहेज या लेन–देन की कोई बात नहीं होगी, मायके से एक या दो से ज्यादा गहना नहीं देना है, कपड़ा सिर्फ मम्मी को देना है, जो खादी का हो; मम्मी को बैग भी दें तो खादी भंडार का ही। लहेरियासराय में मम्मी की बड़ी मामी की बड़ी बहन रहती थीं। उनके घर से शादी हुई। पापा खादी का सफेद धोती– कुरता–बंडी पहनकर चार दोस्तों के साथ रिक्शे पर आए। विधि के तौर पर भी उन्होंने न एक रुपया लिया, न एक कपड़ा। वहाँ के लोगों को बहुत अजीब लगा कि यह लड़का कैसा है?पर सभी संतुष्ट थे कि लड़का प्रोफेसर है। विदा होते समय पापा ने घूँघट लेने से मना कर दिया। जब कोठियाँ पहुँचनेवाले थे तो गाँव का एक लड़का सुरजिया, जो बारात में गया था, मम्मी को बोला कि घूँघट कर लीजिए। घर के ठीक सामने पापा ने पुस्तकालय बनवाया था, मम्मी को लेकर सबसे पहले वे वहीं गये। फिर घर लेकर गए, जहाँ दुल्हन के आने पर कोई खास विधि नहीं हुई, न ही कोई खास भोज। पापा की हिदायत थी कि ऐसा कुछ नहीं करना है।

सुबह मेरी दादी किशोरी देवी आयीं तो मिट्टी में पाँव सना हुआ था, मम्मी ने पैर छुआ। उसी समय पापा के चचेरे बड़े भाई रामेश्वर प्रसाद आए, तो पापा के कहने पर मम्मी ने पैर छुए। फिर तो खूब हंगामा हुआ कि दुल्हिन ने भैंसुर (जेठ) का पैर छू लिया, जिसे पाप माना जाता है। मम्मी को यह सब बहुत अजीब लग रहा था कि पापा ऐसा क्यों कर रहे हैं। सुबह–सुबह खाली पाँव, खादी का हाफ पैंट, खादी की गंजी पहनकर मम्मी को लेकर पापा गाँव में घूमने चल दिये। पूरे गाँव में हंगामा मचा कि कन्हैया जी (घर का नाम) नई दुल्हिन को लेकर सबेरे–सबेरे पूरे गाँव में घूमा रहे हैं और वह भी बिना घूँघट। मेरे दादा सूरज प्रसाद ने मम्मी से कहा कि वे सर पर आँचल रख ले, तो पापा ने मम्मी से कहा कि अगर मेरे साथ रहना है तो मेरे साथ चलना होगा। दादा और पापा में वैचारिक मतभेद हमेशा से रहा। पापा के अनुसार मम्मी रहने लगीं। शादी के 10 दिन बाद मम्मी के बड़े मामा की बड़ी बेटी की शादी बेगुसराय से हुई, जहाँ वे दोनों शादी के बाद पहली बार कहीं अकेले गये। फिर पापा ने मम्मी को दरभंगा पहुँचा दिया, क्योंकि पढ़ाई करनी थी।

पापा का परिवार भले ही धार्मिक और परंपरावादी था, पर पापा बचपन से ही अलग विचारधारा के थे। वे बहुत छोटी उम्र से ही सोच से नास्तिक, परम्पराओं के विरोधी और स्वभाव से गाँधीवादी थे। हालाँकि उस उम्र में उन्हें गाँधी या गाँधीवाद पता भी नहीं था। पापा 11 वर्ष की उम्र में 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन में सोशलिस्ट पार्टी में सक्रिय होकर हिस्सा लिये और अपने चचेरे बड़े भाई लक्ष्मेश्वर प्रसाद के साथ ट्रेन की पटरी उखाड़कर बच निकले थे। छात्र जीवन में ही वे गाँधीवाद के प्रबल समर्थक बने और समाजवाद से जुड़ गये। मम्मी का परिवार पूरी तरह धार्मिक और परंपरावादी था, तो मम्मी की सोच उसी के अनुसार था। मम्मी को तब न गाँधीवाद पता था, न नास्तिकता, पर इतना जानती थी कि पापा विद्वान हैं, जो कहते हैं, वह सही ही होगा। शादी के बाद जब पहली तीज पर पापा ने स्पष्ट कह दिया कि आपको तीज नहीं करनी है। लेकिन मम्मी को ईश्वर में आस्था थी, उन्होंने छुपकर तीज किया। जिसका पता पापा को कभी न चला। 1963 में मम्मी दरभंगा से भागलपुर आई और पूरे रास्ते पापा की हिदायतें, नियम, विचार सुनती–समझती रहीं। नाथनगर के कर्णगढ़ में पापा रहते थे। नाथनगर के पुरानी सराय मोहल्ले में मम्मी की चाची सुमित्रा देवी रहती थीं, जो शिक्षिका थीं। वे अक्सर उनके घर चली जाती थीं।

1975 ई0 में हम सभी गाँव चले आए, वहाँ बहुत ज्यादा बाढ़ आयी थी। यहाँ इन दोनों भाई–बहन को छोड़कर पापा–मम्मी भागलपुर लौट आए। उन्हीं दिनों मम्मी बहुत बीमार हो गयीं। पटना में मम्मी की चचेरी बहन प्रेमा प्रसाद (चाची सुमित्रा देवी की बेटी) जो स्कूल में शिक्षिका थीं तथा उनके पति गोपाल प्रसाद सी.आई.डी. में कार्यरत थे। मम्मी के बीमार होने की सूचना पाकर मौसा उनको पटना ले गये। थोड़ी स्वस्थ होने के बाद भागलपुर आयीं और अपने बड़े मामा की बड़ी बेटी श्रीमती रेणुका सिन्हा, जिनके पति गौरकिशोर प्रसाद उस समय रेलवे में मजिस्ट्रेट थे और स्टेशन परिसर में रहते थे, के पास रहने चली गयीं। हमलोग बाढ़ के कारण भागलपुर लौट नहीं सके, तो हम दोनों भाई–बहन दादी के पास रहकर गाँव में ही पढ़ने लगे।

जून 1976 में मम्मी फिर से बीमार हुईं। पापा उन दिनों गाँव आए हुए थे। मौसी सपरिवार बाहर गई थीं। डॉ. क्वाड्रेस जो उस समय के मशहूर डॉक्टर थीं, ने एक दिन भी देर करने से मना कर दिया और यूट्रेस रिमूवल के ऑपरेशन का टाइम दे दिया। मम्मी अस्पताल में भर्ती हुई और छुपकर बाहर जाकर ऑपरेशन का सामान खरीदी, सबको टेलीग्राम की। पापा किसी काम से शिवहर गए, तो टेलीग्राम मिला। पापा वहीं से चले गये, किसी के द्वारा हमलोग को खबर भेज दिये कि वे भागलुपर जा रहे हैं। मम्मी तबतक अस्पताल से मौसी के घर आ चुकी थीं। हमारी वार्षिक परीक्षा के बाद मम्मी गाँव आई और मुझे लेकर भागलपुर आ गयीं। भैया को गाँव में ही रहकर पढ़ने को पापा ने कहा था।

1977 की गर्मी के दिनों में पापा बीमार हो गये। उनको जॉण्डिस हुआ, जो बाद में लिवर सिरोसिस हो गया। स्वतंत्रता सेनानी और भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी के नेता किशोरी प्रसन्न सिंह, जिन्हें हम सभी किशोरी भाई कहते हैं, पापा–मम्मी को बहुत मानते थे। किशोरी भाई ने अपनी पत्नी के नाम पर हाजीपुर में सुनीति आश्रम बनाया था, वहाँ उन्होंने पापा–मम्मी को आकर रहने के लिए कहा। मैं भी साथ गयी। एक महीना हमलोग आश्रम में किशोरी भाई के साथ रहे। पापा की तबियत में कोई सुधार न हुआ। वे दिल्ली के एम्स में एक माह भर्ती रहे। अंततः 18 जुलाई, 1978 को पापा सदा के लिए चले गये। मम्मी जैसे पूरी तरह से टूट गयीं। उनकी उम्र उस समय काफी कम थी। मानसिक, आर्थिक, सामाजिक परेशानियों से एक साथ घिर गयीं। संघर्ष का दौर शुरू हो चुका था। मेरा भाई अमिताभ सत्यम् चूँकि पढ़ाई में तीक्ष्ण था, अतः गाँव के उसके विद्यालय के शिक्षकों के आग्रह पर वह गाँव में ही रहकर मैट्रिक किया। फिर वह आई.आई.टी. कानपुर और फिर स्कॉलरशिप पर अमेरिका चला गया। धीरे–धीरे हम सभी की जिंदगी समय के साथ अपनी–अपनी पटरी पर चल पड़ी।

समय ने मम्मी को बहुत छला है। अपनी मृत्यु के एक वर्ष पूर्व से पापा काफी बदल गये थे। मेरी शादी और भाई की पढ़ाई की बात मम्मी–पापा से अक्सर करते थे। एक दिन पापा मुझे और मम्मी को लेकर बाजार गये और

मम्मी के लिए खूबसूरत शिफॉन की दो साड़ी खरीदे। फिर हमलोग कचौड़ीगली गये और वहाँ नाश्ता किये। अपने और मम्मी की सहूलियत के लिए कैरो गैस, प्रेशर कूकर, लोहे का आलमीरा खरीदे। मैं सोचती थी कि आज दलिया की जगह रोटी तरकारी और चूड़ा–घुघनी हम खा रहे हैं और पापा कुछ नहीं बोले। शुरू से ही हमारे यहाँ हर महीने भोज जरूर होता था, जिसें पूड़ी–तरकारी–भुजिया–पुलाव–खीर आदि बनता था। लेकिन सामान्य दिनों में हमलोग दलिया–दही, घी और भात–दाल–तरकारी खाते थे। सूती, ऊनी या सिल्क हो, खादी के अलावा और कोई कपड़ा हमारे यहाँ नहीं आता था, सिवा हमलोगों के स्कूल यूनिफॉर्म को छोड़कर। मम्मी को भी अब खादी बहुत पसंद आ गया था।

पापा को घूमने का बहुत शौक था और वे अलग–अलग ट्रिप में सबको घूमाते थे। कभी सिर्फ मम्मी को लेकर गये, कभी नाना–नानी–मम्मी को लेकर गए, कभी दादा–दादी को, कभी माँ और हम भाई–बहन को लेकर गये, तो कभी सिर्फ भैया को लेकर गए। सबसे कम मैं ही घूमी हूँ पापा के साथ। परन्तु मम्मी के साथ मैं शुरू से ही हर जगह जाती थी। चाहे कोई मीटिंग हो या कॉन्फ्रेंस या धरना–प्रदर्शन। पापा को फोटो खींचने और खुद साफ करने का शौक था। 1967 में हमलोग नया बाजार के यमुना कोठी में किराये पर आग गये, जहाँ 2009 तक मम्मी रहीं। वह बहुत बड़ा घर था और बरामदा भी बहुत लंबा–चौड़ा था। मम्मी की तस्वीरें, जो पापा खींचकर खुद साफ करते थे, को बड़ा कराके फ्रेम कराकर सभी कमरे और बरामदा में टाँग दिये। चारों तरफ सिर्फ मम्मी ही मम्मी। पापा की अपनी एक भी तस्वीर नहीं थी। मम्मी को लगभग पूरा भारत पापा घूमा चुके थे। भैया ने मम्मी को दो बार अमेरिका घुमाया। मम्मी के जितने भी शौक थे, सभी पूरे हुए, सिर्फ लंदन जाना रह गया था, जो बीमारी के कारण नहीं हो सका। भागलपुर में अपना मकान जिसमें सामने गार्डन हो और खूब सारे फूल हों, मम्मी की यह कामना भी हुई। बहुत कम समय तक मम्मी स्वस्थ होकर अपने घर का आनंद उठा सकी, इस बात का मुझे बहुत दु:ख है। पर खुशी है कि जितना भी समय स्वस्थ होकर वहाँ रही, बहुत खुश रही।

मम्मी भी पूरी तरह गाँधीवादी, साम्यवादी, समाज सेविका, शिक्षिका और अंत में प्राचार्य बन गयी थीं। वे यह सब अपने विचार, मेहनत और हिम्मत से कीं। पापा भी यही चाहते थे कि कोई भी विचार मम्मी खुद समझें और मन से अपनाएँ। मम्मी अपने आगे बढ़ने और शिक्षित होने का सारा श्रेय पापा को देती थीं। अन्यथा इस मुकाम तक नहीं पहुँचतीं। मम्मी बताती थीं कि गाँधी शान्ति प्रतिष्ठान केन्द्र में पहली बार जब मुझे भाषण देना था, डर से थरथर काँप रही थी। पापा ने भाषण लिखा और मम्मी के पीछे खड़े होकर बोलते गए, मम्मी दुहराती गयी। धीरे–धीरे मम्मी इतनी सक्षम हो गयीं कि एक बार मंच पर गई तो किसी भी मुद्दे पर बिना रुके घंटों बोल सकती थी।

अंतिम छः माह पापा का बहुत खराब बीता था। मम्मी या कोई भी नहीं समझ सका था कि पापा को लिवर सिरोसिस है, जो ठीक नहीं होगा। डॉक्टर को भी आश्चर्य होता था कि जो चाय तक नहीं पीता है, उसका लिवर कैसे इतना खराब हुआ। पापा और हम सभी पूर्ण रूप से शाकाहारी थे और प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार स्वास्थ्यप्रद खाना ही खाते थे। अंतिम दिनों में मम्मी से वह सब खाना बनवाने लगे जो पापा कभी नहीं खाते थे। जब उनकी तबियत बहुत खराब रहने लगी तो मम्मी की जिद पर ऐलोपैथी के डॉक्टर पवन कुमार अग्रवाल, जो नयाबाजार में रहते थे और मौसा के घनिष्ट मित्र थे, को दिखाने लगे। लेकिन पापा की बीमारी इतनी बढ़ गई थी कि किसी भी पैथी से ठीक होना नामुमकिन हो गया। मम्मी में अनेक बदलाव आये, लेकिन नास्तिक नहीं बन पाई थी। वह शिव की पूजा करती रहीं। लेकिन न भगवान शिव, न कोई डॉक्टर पापा को बचा सके। अब मम्मी का सामाजिक प्रताड़ना के साथ आर्थिक और मानसिक कष्ट का समय आ गया था।

विधवा युवती के साथ समाज का रवैया बहुत गलत होता है, मम्मी को आजीवन इसका सामना करना पड़ा। हाँ, यह जरूर है कि कुछ रिश्तेदारों, मित्रों, सहकर्मियों ने मम्मी की बहुत मदद की। मेरी दादी तो मम्मी की सास से माँ बन गई और 102 साल की आयु में अपनी मृत्यु तक मम्मी को हर तरह से सहारा देती रहीं। समाज का घिनौना चरित्र समय के साथ मम्मी भले भूल गयी और लोगों को माफ किया, लेकिन मुझे सब याद है कि किसने मम्मी को क्या कहा, किसने अपमान किया, किसने रुलाया। मुझे हर एक घटना याद है, जिसने मेरे जीवन को प्रभावित किया है। पापा का न होना शुरू के एक–दो साल बहुत अखरा था, लेकिन मम्मी साथ थीं तो सब सामान्य हो गया। विवाहोपरांत पापा का न होना मेरे लिए बहुत कष्टदायक रहा। मम्मी का जीवन जिन लोगों ने कष्टप्रद बनाया है, मैं आश्वस्त हूँ कि अपने इसी जन्म में उनके कर्म का फल देखूँगी। कर्म का फल प्रकृति का नियम है और यह तय है।

मम्मी के लिए मैं कुछ नहीं कर सकी, इसकी टीस मुझे झकझोरती है। मेरे कारण मम्मी ने बहुत अपमान सहा है, यह बात मैं भूल नहीं सकती। मम्मी चुप होकर, दबकर सब कुछ सहन करती रहीं। जब भी मैं दुखी होती तो मम्मी मुझसे कहती–''चिंता नहीं करो, हम हैं ना।'' देह से लाचार थीं, लेकिन मुझमें जीने की हिम्मत बढ़ाती रहतीं। अब मैं क्या करूँ, अपनी पीड़ा किससे साझा करूँ? मम्मी की मृत्यु के बाद से मैं निडर हो गयी हूँ। मेरे पास अब खोने को कुछ नहीं रहा। सभी रिश्ते–नाते अपने–अपने जीवन में व्यस्त हैं, मेरी परवाह करनेवाली सिर्फ मम्मी थीं, जो अब नहीं हैं। मुझे महसूस होता है, मानो मम्मी मुझमें समा गयीं और मुझे बख़ौफ बना दीं।

आज मम्मी को पंचतत्व में विलीन हुए एक साल हो गये हैं। आज बहुत दु:खी हूँ, मम्मी नहीं हैं और मैं उनपर लिख रही हूँ, जो अब न पढ़ सकेंगी, न उनके प्रति मेरे विचार को शब्दरूप में देख पाएँगी। यह जगत् और वह जगत् बहुत रहस्यमय है, दार्शनिकों को पढ़ती हूँ, समझने का प्रयास करती हूँ, लेकिन मेरी समझ से परे है। मम्मी! अगर तुम मुझे देख सकती हो, सुन सकती हो, समझ सकती हो, तो मेरे मन की अवस्था समझना। अब चारों तरफ एक सन्नाटा है, जिसमें तुम्हारी बेटी हँसते–हँसते धीरे–धीरे गुम हो रही है। मैं तुमसे सदैव कहती थी–''हमसे पहले तुम इस संसार से नहीं जाना। तुम्हारे सिवा कोई नहीं जो हमको समझता हो।'' तुम मेरी इस बात पर कितना गुस्सा होती थी–''तुम मर जाओगी और हम जिन्दा रहेंगे!'' हमको छोड़कर चली गयीं, मम्मी! मैं अनाथ हो गयी। कहने को तो हजारों रिश्ते हैं, जिन्हें मैं जी रही हूँ, निभा रही हूँ, लेकिन मेरा वजूद किसी के लिए जरूरी नहीं, यह तुमसे ज्यादा कोई नहीं जानता है। जानती हूँ मृत्यु के बाद सारे बंधन मिट जाते हैं, फिर भी चाहती हूँ कि जिस संसार में अब तुम हो, वहाँ बहुत खुश रहना और अगर दूसरा जन्म हो तो ऐसे परिवेश में हो, जहाँ सबको बराबर अधिकार हो।

एक अच्छे दिन में मम्मी इस संसार से विदा हुई, जिस दिन महात्मा गाँधी ने शहादत दी। आज महात्मा गाँधी की 74वीं पुण्यतिथि है और मम्मी की पहली पुण्यतिथि। महात्मा गाँधी को हार्दिक नमन! इस आलेख के द्वारा मम्मी को श्रद्धांजलि!

कहानी /

गोष्ठी के बहाने

अश्विनी कुमार दुबे
महालक्ष्मी नगर, इंदौर
मो. 9425167003

अखिलेश कहानियाँ लिखता है। उनकी कई कहानियाँ विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। पिछले वर्ष उसका एक कहानी संग्रह भी प्रकाशित होकर आया है। इतना कुछ लिखने के बाद भी वह अपने लेखन के प्रति ज्यादा उत्साहित नहीं रहता। इसके कई कारण हैं–पहला तो यही कि कहानी लिख लेने के पश्चात् वह प्रकाशन के लिए उसे कहाँ भेजे? यह प्रश्न हर कहानी लिख लेने के पश्चात् उसे बहुत परेशान करता है। हिन्दी जगत् में अब इनी–गिनी पत्रिकाएँ हैं, जिनकी प्रसार संख्या बहुत कम है, परन्तु उनके संपादकों के नखरे बहुत ज्यादा है।

अखिलेश ने पिछले दिनों 'विमर्श' नामक पत्रिका में अपनी कहानी भेजी। बहुत दिनों तक पत्रिका कार्यालय से निर्णय की कोई सूचना नहीं आई। उसने ईमेल पर कई संस्मरण पत्र प्रेषित किये। वहाँ से कोई जवाब नहीं आया। जबतक वहाँ से निर्णय की सूचना नहीं मिलती, कहानी को दूसरी पत्रिका में भेजना ठीक नहीं होगा। 'विमर्श' वाले महीनों कोई जवाब नहीं देते। इस बीच अखिलेश ने दूसरी कहानी पूरी कर ली। इसे कहाँ भेजें? 'विमर्श' में नहीं भेज सकते। वहाँ पहले से उसकी एक कहानी विचाराधीन है। उसने सोचा–चलो, किसी दूसरी पत्रिका को भेजते हैं। वहाँ भी आठ–दस महीने रचना विचाराधीन ही रहनेवाली है।

आज इतवार है। गाँधी पुस्तकालय भवन में एक गोष्ठी आयोजित है। उसे सायं चार बजे वहाँ पहुँचना है। मधुकरजी के कहानी संग्रह पर चर्चा है। मधुकरजी अखिलेश का हमउम्र हैं। 'विमर्श' में उनकी कहानियाँ लगातार छप रही हैं और कई नामी पत्रिकाओं में उनकी कहानियाँ छपी हैं। 'विमर्श' में तो वे छाये रहते हैं। उसमें उनकी कहानियाँ तो छपती ही हैं, कहानियों पर पाठकों–आलोचकों की लंबी–लंबी टिप्पणियाँ भी प्रायः छपती रहती हैं। पिछले अंक में उनके सद्यः प्रकाशित कहानी संग्रह की विस्तृत समीक्षा भी प्रकाशित हुई है। आज उसी कहानी संग्रह पर शहर की साहित्यिक संस्था 'प्रभात' ने एक विचारगोष्ठी आयोजित की है।

अखिलेश मधुकरजी से बहुत प्रभावित है। उनकी कहानियाँ, कहानियों पर टिप्पणियाँ और समीक्षा आदि 'विमर्श' में देखकर वह अभिभूत है। इसी प्रकार कुछ और प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में भी मधुकरजी की चर्चा पढ़कर वह अचंभित होता। उसे अपना लिखा हुआ मधुकरजी से कम प्रतीत नहीं होता। कई पत्रिकाओं में उसकी कहानियाँ भी प्रकाशित हुई हैं, परन्तु उनकी जैसी चर्चा उसकी कहानियों पर कहीं नहीं हो पाई। मासिक पत्रिकाएँ प्रायः सालभर में एक लेखक को एक बार छापती है। हाँ, मधुकरजी की बात अलग है। वे एक ही साल में कुछ पत्रिकाओं में कई–कई बार छप जाते हैं। उनकी पुस्तकों की समीक्षाएँ, उनके ऊपर लेख और साक्षात्कार आदि भी कम अंतराल में विभिन्न पत्रिकाओं में छपते रहते हैं। यह सब देखते हुए अखिलेश को सुखद आश्चर्य होता है।

आज मधुकरजी के नये कहानी संग्रह पर चर्चा है। गोष्ठी की अध्यक्षता शहर के वरिष्ठ साहित्यकार श्रीनित्यानंद कर रहे हैं। नित्यानंदजी और मधुकरजी की दोस्ती बहुत पुरानी है। मधुकरजी जो भी लिखते, उसके पहले पाठक नित्यानंद जी ही हुआ करते, यह बात शहर के सभी साहित्यकार भलीभाँति जानते हैं। नित्यानंदजी का सुझाव मधुकरजी को मानने में कभी कोई परेशानी नहीं हुई। इस प्रकार नित्यानंदजी मधुकरजी की हर रचना का इतिहास अच्छी तरह जानते–समझते थे। कुछ दिनों से नित्यानंद और मधुकरजी में अनवन चल रही है, ऐसी उड़ती हुई खबर शहर की साहित्यिक बिरादरी में व्याप्त थी। लोग इसे ज्यादा गंभीरता से न लेते थे। सहमतियाँ और असहमतियाँ लिखने–पढ़नेवालों में प्रायः होती रहती हैं।

गोष्ठी बहुत अच्छी चल रही थी। मधुकरजी के कथासंग्रह पर दो समीक्षात्मक लेख पढ़े गये, जो काफी अच्छे थे। उनमें बताया गया कि मधुकरजी का यह कहानी संग्रह कई माने में विशिष्ट है। इसमें हमारे आसपास के पात्रों की कहानियाँ हैं, संग्रह की कहानियों में रोजमर्रा की घटनाओं का मार्मिक वर्णन है। इन कहानियों में आम आदमी के जीवन संघर्ष को बहुत ही प्रभावशाली भाषा–शैली में लिखा गया है। मधुकरजी की कहानियाँ पाठकों को नये अनुभवों से परिचित कराती हैं।

मधुकरजी ने संग्रह में से एक कहानी का पाठ करने के पश्चात् उसकी रचना प्रक्रिया पर विस्तार से प्रकाश डाला। अंत में नित्यानंदजी का अत्यन्त उत्तेजित अध्यक्षीय भाषण हुआ।

'मधुकरजी को कहानी लिखना नहीं आता।'' इस वाक्य से शुरू करते हुए उन्होंने कहा–''इनकी सारी कहानियों को सुधारकर मैंने उन्हें छपने लायक बनाया, परन्तु उन्हें छापे कौन? इसका सीधा–सरल रास्ता पकड़ने में मधुकरजी ने कोई विलंब नहीं किया। सबसे पहले उन्होंने विमर्श के संपादक को पकड़ा। ताकि उनकी साहित्यिक राजनीति अच्छी–खासी चलती रहे और वे मठाधीश बने रहे। अधिकतर लोग जो संपादक बनकर अपनी पत्रिकाएँ निकालने लगे, वे प्रायः जब भी किसी से मिलते तो अपनी पत्रिका के आर्थिक संकट का रोना जरूर रोते हैं। मानो घर बेचकर वे माँ भारती की महती सेवा कर रहे हैं। मित्रों से उनकी अपेक्षा रहती की वे उन्हें किसी भी तरह, सीधे राशि प्रदान कर या विज्ञापन दिलाकर सहयोग जरूर प्रदान करें। मधुकर जी ने उन्हें दोनों तरीकों से भरपूर सहयोग प्रदान किया। बदले में उन्होंने भी मधुकरजी को खूब छापा। उनकी कहानियाँ पर चर्चाएँ करायीं। उनकी पुस्तकों पर अच्छी खासी समीक्षाएँ लिखवाकर उन्हें छापा। इस प्रकार सहसा मधुकरजी बड़े लेखक हो गये। जबकि उन्हें ठीक से कहानी की समझ तक नहीं है। इसी प्रकार उन्होंने कई संपादकों से संपर्क–संबंध बनाए और उन्हें खुश करते हुए उनकी पत्रिकाओं में छपने लगे। यों मधुकर जी को कहानी की कोई तमीज नहीं है।

कोई बड़ा प्रकाशक मधुकर के सामने घास नहीं डालता। वे अपने संग्रह प्रकाशकों को अनुदान राशि देकर छपवाते रहते। चर्चित लेखक होने के लिए वे तरह–तरह के धतकरम करते रहने से बाज नहीं आते।''

गोष्ठी में उपस्थित सारे लेखक नित्यानंदजी का भाषण सुनते हुए अचंभित हुए। कहाँ तो नित्यानंदजी मधुकरजी की तारीफ करते न अघाते थे, कहाँ आज वे उन्हें कहानीकार मानने को तैयार नहीं हैं। नित्यानंदजी अपना अध्यक्षीय भाषण समाप्त कर जल्द चले गये। हालाँकि उनके भाषण के पश्चात् सिर्फ धन्यवाद ज्ञापन होना था। वे उसे सुनने के लिए भी नहीं रुके। उन्हें शंका थी कि अब उनके भाषण पर लोग तरह–तरह की टीका टिप्पणी करेंगे, जिसे वे सुनना नहीं चाहते थे। वातावरण गरम भी हो सकता था, इसलिए वे वहाँ से तुरंत खिसक लिये।

धन्यावाद ज्ञापन के पश्चात् एक साथ कई लोगों ने मधुकरजी से प्रतिक्रिया जाननी चाही। वे मुस्कुराए और बोले–''आजकल मुझसे नाराज

चल रहे हैं।''

''भले ही वे नाराज चल रहे हों, परन्तु उन्होंने बात तो बिल्कुल सही कही। लोग इसी तरह संपादकों को खुश करके उनकी पत्रिकाओं में छाये रहते हैं।'' किसी ने चुटकी ली

''आजकल बहुत से संपादक विचारधारा का दंभ भरते हुए अपनी ईमानदारी का बिगुल बजाते रहते हैं, परन्तु विज्ञापन बटोरने के लिए आर्थिक अनुदान पाने के लिए वे राजनेताओं और नौकरशाहों के सामने बुरी तरह बिछ जाने से नहीं चूकते। कई नौकरशाहों को तो इन्हीं संपादकों ने महान लेखक बना दिया। छाये रहते हैं उनकी पत्रिकाओं में ऐसे ही तथाकथित लेखक।'' दूसरे ने बात को नया मोड़ दिया।

बड़ा लेखक होने के लिए आजकल चार बातें जरूरी हैं, पहली आप बड़े अफसर हों। दूसरी आप किसी संगठन, साहित्यिक संस्थान, सरकारी परिषद् आदि में पदाधिकारी हों। तीसरी आप स्वयं किसी पत्रिका के संपादक हों और चौथी यदि आप महिला हैं और खूबसूरत भी, तो पत्रिकाएँ आपको जरूरी छापेंगी। लेखन की गुणवत्ता इसके बाद आती है। आप निरंतर अच्छा लिख रहे हैं और लगातार पत्र–पत्रिकाओं में रचनाएँ भेज भी रहे हैं, तब रचनाएँ भी छपेंगी, परन्तु पाँचवें क्रम में, बहुत इंतजार करने के पश्चात्।'' तीसरे लेखक ने अपनी लंबी प्रतिक्रिया व्यक्त की।

अखिलेश ने सबकी बातें सुनी और बहुत दिग्भ्रमित हुआ। वह नये–नये विषयों पर कहानियाँ लिख रहा है। पत्रिकाओं को अपनी रचनाएँ ईमेल पर भेजता है। न पावती की सूचना आती और न महीनों तक कहानी पर निर्णय की। इस बीच वह कहानी नहीं अन्यत्र छप जाए तो लेखक का अपराध अक्षम्य है। कहते हैं, सूचना क्रांति हो गई है। सूचना भेजना और पाना अब बहुत सरल है। तब आधिसंख्य पत्रिकाओं के संपादक सालोंसाल किसी रचना पर निर्णय की सूचना लेखक को नहीं देते। साहित्य जगत में वैसे ही गिनी–चुनी पत्रिकाएँ रह गयीं हैं, उनमें भी अधिकतर गुटबाजी और साहित्यिक राजनीति से ग्रसित हैं। ऐसे में एक लेखक जो सिर्फ लेखक है, वह अपनी रचनाएँ कहाँ भेजे? अखिलेश के सामने यह प्रश्न हमेशा मुँह बाये खड़ा रहता है। यह स्वभाव से लेखक है, परन्तु आजकल वह अपने लेखन के प्रति ज्यादा उत्साहित नहीं रहता।

शहर में एक वयोवृद्ध साहित्यकार दिवाकर जी रहते हैं। अखिलेश प्रायः उनके पास जाता रहता है। उसके पास बैठकर, उन्हें सुनते हुए उसे सुकून मिलता है। आज उनके पास जाकर उसने उन्हें गोष्ठी का पूरा विवरण कह सुनाया। सुनकर उन्होंने एक सर्द आह भरी और बोले–''आजकल साहित्य जगत् में पहले जैसी बात नहीं रही। हमारे समय के लेखकों के आपसी सहयोग, आदर और स्नेह की बातें याद करके मन भर आता है। संपादक भी अपने लेखकों का बहुत ख्याल करते और नये लिखनेवालों को खूब प्रोत्साहित करते थे। उस समय बड़े संस्थानों से लोकप्रिय पारिवारिक पत्रिकाएँ निकल रही थीं। सही माने में उन्हीं पत्रिकाओं ने साहित्य को घर–घर पहुँचाने का काम किया। उन पत्रिकाओं ने लेखकों की नई पीढ़ी बनाई। किन्हीं कारण से वे पत्रिकाएँ बंद हो गयीं, तबसे उनका स्थान आजतक रिक्त है। अब चंद साहित्यिक पत्रिकाएँ हैं, जिनकी प्रसार संख्या बहुत कम है। प्रायः उनके संपादक साहित्य सेवा कम, साहित्य की राजनीति ज्यादा करते हैं।''

''ऐसी स्थिति में जो सिर्फ लेखक हैं, उनका बहुत नुकसान हो रहा है।'' अखिलेश ने जिज्ञासा प्रकट की।

''मेरे विचार से जो सचमुच लेखक हैं, उन्हें सिर्फ अपने लेखन पर ध्यान देना चाहिए। अच्छा लेखन देर–सवेर अपनी जगह बना लेता है।'' दिवाकरजी ने अखिलेश को समझाया।

''आज गोष्ठी में नित्यानंदजी ने चर्चित लेखकों को कच्चा चिट्ठा खोलकर रख दिया। हमलोग समझते थे कि लोग अपने लेखन के कारण पत्र–पत्रिकाओं में छाए हुए हैं, जबकि असलियत कुछ और है। पत्रिकाओं को विज्ञापन दिलवाकर, संपादकों की खुशामद करके और प्रकाशकों को पैसे देकर लोगों का साधारण लेखन धड़ल्ले से छप रहा है और जो सचमुच लेखक हैं, उनकी रचनाओं पर सालों साल संपादक–प्रकाशक निर्णय तक नहीं लेते।'' अखिलेश ने चिंता व्यक्त की।

''साहित्य को साधना की तरह ही लेना चाहिए। लिखने में जो सुख है, वह अद्वितीय है, जिसे लेखक ही जानता है। यह बात ठीक है कि लिखा हुआ छपना भी चाहिए, ताकि और लोग भी रचना के सुख से परिचित हो सकें, परन्तु इसमें समय लगता है। संस्कृत के महान कवि 'भवभूति' कहते थे कि कभी कोई समान धर्मा आएगा और मेरी रचनाएँ पढ़कर सुख प्राप्त करेगा। हर अच्छे लेखक की यही सोच होनी चाहिए।'' देवदत्तजी ने गंभीरतापूर्वक अपना आदर्श दोहराया।

अखिलेश को बात समझ में आ गई। सच्चे लेखक का सुख सिर्फ लिखने में है। हल्के समय की धार में बह जाते हैं। जिनमें वजन है, उनका ही आगे चलकर मूल्यांकन होता है। अखिलेश को अपने लेखन का उद्देश्य समझ में आ गया। अब वह नित्यानंद और मधुकर जी के विवाद को हँसी में उड़ाता है। गोष्ठी के बहाने आज देवदत्त जी ने बहुत सारगर्भित बातें बतायीं।

गीत

संदीप 'सरस'
साहित्य संपादक 'दैनिक राष्ट्र राज्य'
शंकरगंज, बिसवा,
सीतापुर (यू.पी.) 9450382515

मुखर वेदना को सहेजकर जीना भी कैसा जीना है
जीवन यदि जीवन्त न हो, तो जीवन से मरण श्रेष्ठ है

बाधाओं के सम्मुख कैसे, नतमस्तक हो झुक जायेंगे
थककर चूर हुए तो क्या, हार मानकर रुक जायेंगे

पथ के कण्टक पुष्प बनाना, पौरुष का परिचय होता है
पथ को जो गौरव दे पाए, मानूँगा वह चरण श्रेष्ठ है

जनहित जगहित मानवता से, बढ़कर कोई धर्म नहीं है
भूखे को रोटी देने से, बेहतर कोई कर्म नहीं है

व्यक्ति नहीं व्यक्तित्व अमर है, हम बदलेंगे युग बदलेगा
जीवन को अमरत्व सौंप दे, ऐसा शुभ आवरण श्रेष्ठ है

मंजिल से पहले रुक जाना, यह यात्री का काम नहीं है
जीवनपथ पर चलना जीवन, पलभर श्री विश्राम नहीं है

ठहरा जल सड़ांध देता है, बहते रहना ही जीवन है
हर क्षण जीवनगान सुनाती सरिता का अनुसरण श्रेष्ठ है।

कहानी /

वृक्षगंधा

रजनी शर्मा बस्तरिया
देशबन्धु प्रेस के सामने रायपुर (छ.ग.)
मो. 9301836811

गायों के रंभाने की आवाज आने लगी। दूर धूल की उड़ती गुबार ने गोधूलि वेला का शंखनाद कर ही दिया। गायों के गले में बँधे लकड़ी के डिब्बे में लगी घंटी मानो उनके कदमों से जुगलबंदी कर रही हो।'कृष्णा' ने गायों को भीतर कोठार में बाँधा और चल पड़ी टपरे की ओर।चारो ओर लकड़ियाँ बिखरी थीं। गट्ठा, चिनार, जलाऊ, बत्ता, चिल्फा, बूरा, चूरा और न जाने क्या–क्या। जिनके यहाँ चिरान (लकड़ी काटने) की सुविधा थी, वे गट्ठड़ (गोले) ले लेते थे। चिरी (चीरा लगाया गया लकड़ी) एक खास वर्ग की जरूरत होती थी। पतली पट्टियों को 'फारे' की शक्ल में कोई ले जाना चाह रहा था। कोई लकड़ियों के बारीक–बारीक टुकड़े (चिल्फा) को तौलाने आतुर था। कृष्ण को तो पेंसिल छीलने पर निकले छिलके–सी पतली लकड़ियों का छिलका चाहिए था। खुले आँगन में लकड़ी के चौकोन पलड़े पर बने तराजू में 'लकड़ी बेचईया' बड़ा सा बॉट (वजन) रखता और जमीन पर लकड़ियों की विविध किस्मों को पटकता जाता।

'कृष्णा' काजर सी अंजी आँखें, श्यामवर्ण, कालिया सर्प से केश पर मन एकदम उजला। शाम को चूल्हा जलना है तो लकड़ियों का इंतजाम तो करना ही पड़ेगा।

कृष्णा का मन तो जाने कहाँ–कहाँ विचरता था।कभी नदी के पार में महादेव घाट पर वृक्ष में टँगी लाल पोटली को ध्यान से देखा करती। षोडशी कृष्णा को जीवन–मरण की समझ नहीं थी। वह मन ही मन सोचा करती थी। इस विराने में इस पोटली को कोई क्यों नहीं चुराता?उसे तो बाद में समझ में आया कि कीमत तो जीवित हाड़–मांस की होती है।तन के तंबूरे से निकली इन अस्थियों को सिर्फ और सिर्फ वृक्ष ही यथेष्ठ सम्मान दे सकते हैं। आम के पेड़ की शादी भी उसने देखी थी। अम्मा कहती थी कि आम का फल उसकी शादी के बाद ही खाना चाहिए।

सब जीवित गुण होने के बाद भी इन वृक्षों को जब काटा जाता होगा तो कितनी पीड़ा होती होगी। वह गायों के रंभाने की आवाज सुन दौड़ पड़ती अपने घर। बूरा सिगड़ी में भर 'चित्तौड़गढ़ के किले' जैसे जब वह सिगड़ी के नीचे से ऐंठे हुए कागज से आग जलाती तो उसके बाद सिगड़ी की आग, डेगची की भात, छप्पर से निकलती धुएँ की लकीरों की जुगलबंदी देखने लायक होती थी। भात की खुशबू से पड़ोस भी गमक जाया करते थे।

आज सुबह से मोहल्ले में चहल–पहल थी।'नुआ–बायले' (नई बहू) गाँव आई थी।मंदिर के पास के बरगद जो पूरे गाँव के बाबा स्वरूप थे, उन्हीं के छाँव में नुआ बायले को बिठाया गया। बरगद की सैकड़ों जड़ों ने हाथ बनकर आशीष न्योछावर करने की ठान ली थी। बरगद की पहले पूजा हुई। फिर बाजे गाजे के साथ दुल्हन का गृहप्रवेश। पीपल भी भला कब पीछे रहनेवाला था। वह भी साथ हो लिया। साँझ हुई नहीं कि संध्या दीपक बारने कोई आये, इसका इंतजार तो पीपल को भी रहता था।

कृष्णा को गाँव के पास के जंगल जाकर गिरी सूखी टहनियाँ बटोरने में ही मन रुचता था। सूखे पत्तों को बुहारकर गट्ठे में बाँधना और लाना उसकी और उसकी सखियों का रोज का काम था। उसे यही भला जान पड़ता था। भला कोई जीवित (वृक्ष) हाड़–मांस (शाखा–टहनियों) की चिता जलाता है?ये वृक्ष तो बिना माँगे ही सैकड़ों पत्ते खुशी–खुशी उलीच देते थे।

कृष्णा जंगल के आगे भीतर तक जाती, जहाँ मधूक (महुआ) के वृक्ष उसके आने की खुशी में गमका करते थे।''गाँव अब शहरिया होने को मचल रहे थे'', साथ ही संदिग्ध लोगों की उपस्थिति भी उस गाँव में बढ़ती जा रही थी। बारिश में फुहारों के साथ पत्तों की ता–ता–थैया, तो पुरवाई चलने पर पत्तों की और हवा की शहनाई गूँजती थी जंगलों में। इन सबसे कृष्णा का पोर–पोर परिचित था। कौन–सा वृक्ष उदास है, किस वृक्ष की अनबन किसके साथ हुई?किस वृक्ष ने नौनिहाल वल्लरियों को पनाह देने से मना किया है। यह सब हिसाब–किसाब कृष्णा को मुँहजबानी याद था।

कृष्णा जब साँझ ढले टोकरियों में सूखे पत्ते लेकर घर आती तो ''पूरा शरीर ही जंगल–जंगल लगता।'' वृक्षों में खुशबू से सुवासित वह 'वृक्षगंधा' ही ज्यादा लगती कृष्णा कम। आज जब कृष्णा जंगल गई तो वृक्षों की संख्या उसे कम लगी, वह बूढ़ा सेमल, वह जवान मधूक, वह नन्हा सागौन...इसकी संख्या में लगातार कमी। आज तो कृष्णा हतप्रभ थी। कदमों के पदचाप जो संख्या में ज्यादा थे।उनकी आवाज लगातार बढ़ती जा रही थी।कृष्णा का मन आशंका से धड़क उठा साथ ही गाड़ियों की अस्पष्ट आवाज आ रही थी।

कृष्णा मन ही मन सोचती थी कि ''मानव शरीर तो वृक्ष के जैसा ही होता है। जमीन से संस्कारों को सोख नस–नस में प्रवाहित विकास रुधिर से आरक्त होता है।लड़कियाँ भी वृक्ष जैसी होती हैं।नयी जगह में लगाये जाने पर कुछ क्षण तो उदास रहती हैं, पर जब वसुधा अपनी छाती पर पनाह देती है, तो खुशी से पल्लवित होकर आसपास को सुवासित कर जाती है।''

साँझ घिर आई थी। कृष्णा को जल्द ही घर पहुँचना था। वह अनमने ढंग से पलटी और आधे रास्ते में ही थी कि कुछ लपट सी उठती दिखी। कृष्णा दौड़ी वापस जंगल की ओर।अरे! यह दावानल, लपटें उठती जा रही थीं। कृष्णा बदहवाश। अभी तो यहाँ छोटी सी चिनगारी भी नहीं थी। अचानक अपरिचितों के बीच कृष्णा ने खुद को घिरा पाया। अरे! ये तुमलोगों ने आग लगाई।ठहरो, अभी सबको बुला लाती हूँ। पर कृष्णा के इस उद्घोष के बाद वीभत्स हँसी के घेरे ने कृष्णा को घेर लिया। कृष्णा कभी इस वृक्ष को सहलाती, कभी उसको। कभी सुलगते वृक्षों को देख रो पड़ती। यह क्या एक हो तो कुछ कर पाये, यहाँ तो दावानल फैल चुका है।मानो वृक्षों ने आज साथ जियेंगे साथ मरेंगे वाली कसम बड़ी बेबसी, अवसादित होकर खा ली थी। वृक्षों के पत्ते–टहनियों के साथ झुलसकर मांस के लोथड़ों से गिरने लगे थे। पूरे जंगल में वृक्षों के जलने की वास थी। सुबह पूरे जंगल खाक हो चुका है। मानुष गंध भी उस जंगल में घुली थी। मानुष गंध कहाँ वहाँ तो वृक्षगंधा ही थी, जिसने अपने आपको स्वाहा किया वृक्षों के साथ।

''जंगल–जंगल काया में वृक्ष की वास, वृक्षों की असंख्य रोम छिद्रों सी कृष्णा की त्वचा, छाल उतारने पर निकला रिसाव, बस कृष्णा की आँखों से बह रहा था।'' इन जंगलों के वृक्षों में ही उसका अस्तित्व था।कई दिन बीत गये। लोग कहते हैं कि इस जंगल में एक पेड़ है।जिससे मानुष गंध आती है, उसका नाम है वृक्षगंधा। वह आज भी इस जंगल में नई कोपलों का इंतजार करती है। जंगल की अकेली रखवाली करती है। मृत कृष्णा का अस्तित्व इन जंगल के वृक्षों में ही था।वह वृक्षगंधा बन चुकी थी।चुपचाप निःशब्द।

समीक्षा/

जीवन वीणा

रवीन्द्र गिन्नौरे
भाटापारा, छतीसगढ

शब्द तो ब्रह्म है। शब्द ही हमारे सुप्त मनोभावों को प्रकट करते हैं। सप्तक में सुर मिलाते गीत में ढलते हैं। कहीं माँ की ममता बन लोरी में दुलारते हैं। शब्द हमारे प्रतिबिम्ब का इंसानियत के प्रतीक बन जाते हैं। शब्द ही कविता के पदचिह्न हैं, एक–एक शब्द से निखरते अर्थ समूचा चित्रण कर देते हैं। कविता ऐसी है, जो शब्दों से पंक्तियों में ढल अर्थवानी बन जाती हैं, जो गेय होती हैं, मार्गदर्शन करती हैं, तो कहीं तीखा प्रहार भी करती है।

कविता तो हर कोई कहता है, लेकिन उनके शब्द कागज में नहीं उतर पाते, विरले ही होते हैं, कविता को रचनेवाले। ऐसे विरलों में अनीता श्रीवास्तव का काव्य संग्रह 'जीवन वीणा' उनके अपने अनुभव से प्रस्फुटित हुआ जान पड़ता है। काव्य संग्रह में कविताएँ, गीत और क्षणिकाएँ समूचा परिवेश प्रस्तुत करती नजर आती हैं। प्रकृति का सौंदर्य और प्रेम की पराकाष्ठा को उकेरती कविताएँ हृदय से मुखरित हुए मनोभावों को प्रकट करती हैं। वर्तमान परिवेश का चित्रण करते हुए विसंगतियों पर तीखा प्रहार करती रचनाएँ भी समाहित हैं अनीता के काव्य संग्रह में।

हिन्दुस्तान की हिन्दी हमारी मातृभाषा नहीं बन पाई, महज इसलिए कि व्यवहार में हम अपनी मातृभाषा की कितनी अवहेलना करते हैं। हिन्दी की दुर्दशा हम खुद करते हैं और हिन्दी दिवस मनाते हैं। स्वांग भरते हैं हिन्दी दिवस मनाने का, जिसपर चुटकी लेते हुए कहा है–

'' ...पिछली बार जब आपको
सॉरी बोलने की जरूरत पड़ी थी
तब हिन्दी वही
हाथ बाँधे खड़ी थी।'' (पृ. 30)

सभ्य और आधुनिक होते हुए इंसान की संवेदना खत्म होती जा रही है। आँसुओं का दर्द जिन्हें समझ नहीं आता, अपनो की समझ और दूसरों के बहते आँसुओं के दर्द का एहसास करते हुए उद्‌गार है–

'' ...अपने और पराये आँसुओं
का फर्क जब मिटेगा
दुनिया में दर्द कहाँ टिकेगा।'' (पृ. 59)

आज का इंसान भयभीत है, वह अपना भय दूर करने के लिए ईश्वर को पूजता है और वह बस सुख की कामना लिए हुए उपासना करता है। ऐसे ही मनोभाव को प्रस्तुत करती कविता की पंक्तियाँ हैं–

''ईश्वर की नहीं
सुखों की उपासना हम करते
करते वक्त नहीं कभी मन को
सदा आसक्त रहते।'' (पृ. 100)

औरतों को जीने का नया अंदाज देते हुए, उनमें नवजीवन का संचार करते हुए, नया जोश भरते हुए आह्वान करती है। माँ, पत्नी, बहन और बेटी का फर्ज निभाते हुए उसे खुद का वजूद बनाए रखना है। ऐसी ही सुन्दर सीख देती पंक्तियों में कहा भी है–

''औरतो! बिना जिए मत मरना
जिंदगी मजबूरियों के
हवाले मत करना
...तेरे किरदार पर
नहीं कहानी है रोज
माँ, पत्नी, बेटी, बहू या बहन
खुद को खुद के साँचे
में भी कभी फिट करना,
औरतों बिना जिए मत मरना।'' (पृ. 92)

आज समूची दुनिया आंतकी वारदातों से भयभीत है, जिनमें इंसानियत तार–तार हो रही है। ऐसी स्थितियाँ देख कवि मन आहत होता, आतंकियों की खिलाफत करते हुए उसे नेस्तनाबूद करने के लिए पीछे नहीं है। आतंकवाद की भर्त्सना करते हुए उसके खिलाफ उठकर मुकाबला करने का हौसला देती एक कविता में कहा है–

''खुशी बेचते हैं, ये राम बेचते हैं,
लगाकर दुकानें धरम बेचते हैं
मासूम चेहरे की पढ़ के इबारत
गुनाहों की दुनिया में देते हैं दावत
लगाकर ये फेरी
कफन बेचते हैं।...'' (पृ. 116)

जीवन वीणा काव्य संग्रह में अनीता ने क्षणिकाएँ भी खूब लिखी हैं। वर्तमान परिदृश्य को उकेरती एक क्षणिका में कहा है–

''झूठ और फरेब बरसा गए
बादल भी आज के
चलन में आ गये।'' (पृ. 184)

अनीता श्रीवास्तव के प्रथम काव्य संग्रह 'जीवन वीणा' की रचनाओं में प्रौढ़ता नजर आती है, वही भविष्य में संभावनाएँ भी। जिनके काव्य में सौंदर्य के साथ वर्तमान परिदृश्य की सुंदरता से उकेरा गया है। काव्य की भाषा सरल व सहज है, व्याकरण की अशुद्धियाँ कहीं नहीं दिखती। काव्य संग्रह में रेखाचित्र भी दिये गये हैं। अंजुमन प्रकाशन ने इसे अच्छे गेटअप में प्रस्तुत किया है। अनीता श्रीवास्तव के काव्य संग्रह 'जीवन वीणा' के लिए साधुवाद!

(लेखिका–अनीता श्रीवास्तव, अंजुमन प्रकाशन 942 आर्य कन्या चौराहा, मुट्ठीगंज, प्रयागराज–मूल्य 150/)

आलेख

स्वतंत्रता से पूर्व प्रकाशित तीन महत्वपूर्ण पुस्तकें

डॉ. सम्राट सुधा
गणेशपुर, रुड़की, उत्तराखंड
9412956361

देश के लिए स्वतंत्रता से पूर्व समरसता, देश–प्रेम और ऐतिहासिक ज्ञानबोध की दृष्टि से लेखन–प्रकाशन से अनेक ऐसे कीर्तिमान हैं, जिन्हें स्वतंत्रता के बाद उपेक्षा मिली। इनमें दो पत्रिका विशेष के विशेषांक तथा एक लगभग पंद्रह सौ पृष्ठों का ग्रंथ है, जो एक के बाद एक वर्षों में प्रकाशित हुए। वर्ष 1927 में प्रकाशित पत्रिका का 'अछूत अंक' वर्ष 1928 में प्रकाशित चाँद का ही 'फाँसी अंक' और वर्ष 1929 में प्रकाशित स्वतंत्रता सेनानी सुंदरलाल लिखित पुस्तक 'भारत में अंग्रेजी राज' को स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद यथोचित सम्मान तो दूर, सामान्य उल्लेख तक ना मिला। कोई भी देश, जो अपने इतिहास के सच और उपलब्धियों से चेहरा घुमा ले, तो इसे उसका दुर्भाग्य ही कहा जाएगा।

चाँद का अछूत अंक :

मई, 1927 में इलाहाबाद से प्रकाशित पत्रिका 'चाँद' के 'अछूत अंक' को हिन्दी साहित्य में दलित चेतना और चिंतन का पर्याय माना जा सकता है। पत्रिका 'चाँद' के उक्त अंक के मुखपृष्ठ पर उस अंक के प्रधान संपादक पंडित नंदकिशोर तिवारी (जो सरयूपारीय ब्राह्मण थे) और प्रेस के हिन्दी विभाग में कंपोजिटर वंशीलाल कोरी (जो दलित वर्ग थे) का एक साथ : एक ही थाली में भोजन करते हुए चित्र प्रकाशित हुआ था। आज से 93 वर्ष पूर्व के जातिगत भेदभावयुक्त समाज में ऐसा उदाहरण साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत किया जाना साहस और सोद्देश्य की बात थी। पत्रिका 'चाँद' के इस अंक में कुल 54 लेख, कहानियों, कविताएँ आदि दलित समस्या तथा चेतना से सम्बद्ध प्रकाशित की गई थीं। इनमें प्रेमचंद की विवादास्पद कहानी 'मंदिर' भी सम्मिलित है, जिसके निष्कर्ष को लेकर प्रेमचंद पर दलित स्थिति के संदर्भ में 'यथास्थितिवादी' होने का आरोप लगा था। इस अंक के अध्ययन से कतिपय चिंतकों का यह दावा निर्मूल सिद्ध होता है कि दलित शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग वर्ष 1936 में मराठी साहित्य में किया गया। वर्ष 1927 में प्रकाशित 'चाँद' के अछूत अंक में प्रकाशित पंडित रामभरोसे दीक्षित की कविता 'अछूतों का उद्धार हो' के ये अंश द्रष्टव्य है–

''दलित नहीं ये लड़ते भारती के लाल
आज से समान अधिकार हो अछूतों का।''

उक्त अछूत अंक का उस समय प्रकाशन यह सिद्ध करता दलित पर उस समय यद्यपि अत्याचार थे, तथापि उदारता का परिवेश बनाए जाने के प्रयास भी कम नहीं थे। इस अंक में प्रकाशित एक समाचार 'अछूतों का मंदिर–प्रवेश' शीर्षक से छपा था–''विक्रमपुर (ढाका) इलाके के प्रसिद्ध ग्राम वज्रयोगिनी में अस्पृश्यों को मंदिर–प्रवेश का अधिकार दे दिया गया है। हाल ही में अस्पृश्यों ने मंदिर में जाकर पूजा की और उच्च वर्ण के हिन्दुओं ने उनके साथ बैठकर जल और मिष्टान्न ग्रहण किया।'' एक अन्य समाचार 'अन्त्यजोद्धार–संबंधी कानून' के अंतर्गत ये पंक्तियाँ उस समय दलित चेतना और उन्हें उपलब्ध कानूनी अधिकारों के परिप्रेक्ष्य में द्रष्टव्य हैं–''बड़ौदा राज्य की व्यवस्थापिका सभा में वे वहाँ के अन्त्यज–प्रतिनिधि श्रीमूल दास भूधरदास ने एक मसविदा पेश किया है। इस कानून के अनुसार स्कूलों, बस्तियों, पुस्तकालयों, कचहरियों, कुओं, देवालयों, धर्मशालाओं आदि से लाभ उठाने का उतना ही अधिकार होगा, जितना दूसरी जातियों को है। इस कानून का उल्लंघन करनेवाले व्यक्ति सरकारी नौकर हों, तो नौकरी से अलग कर दिया जाएगा और यदि कोई गैर सरकारी आदमी इसके विरुद्ध आचरण करेगा, तो 500 रुपये तक का अर्थदंड (जुर्माना) किया जाएगा।'' पत्रिका 'चाँद' का उक्त अछूत अंक मई, 1927 में प्रकाशित हुआ था। हिन्दी साहित्य में किस प्रकार जातीय समरसता को बनाने के प्रयास उस समय हुए, इसका सशक्त प्रमाण यह अंक है। पत्रिका 'चाँद' का अछूत अंक वस्तुतः साहित्यिक चेतना एवं समरसता का उत्कृष्ट उद्घोष है, जिसपर सभी भाषाओं के साहित्यकार व अन्य जन सहज ही गर्व कर सकते हैं।

चाँद का फाँसी अंक :

वर्ष 1927 में अछूत अंक के प्रकाशन के अगले ही वर्ष पत्रिका 'चाँद' ने नवम्बर, 1928 में दीपावली के अवसर पर 'फाँसी अंक' निकाला। इस अंक के संपादक थे चतुरसेन शास्त्री सम्पादक के रूप में अपने भावोद्गार उन्होंने 'विनयांजलि' शीर्षक अंतर्गत अभिव्यक्त किये, एक अंश–''प्यारी बहिनो, माताओ, भाइयो और बुजुर्गो! फाँसी अंक को दिवाली की अमावस्या समझिए। देखिये, इसमें बीसवीं शताब्दी के हुतात्मा के दीये कैसे टिमटिमा रहे हैं, उदीयमान जातियाँ विशेष अवसरों पर विनोद नहीं करतीं, वेदना–स्थलों की जाँच किया करती हैं।...कुछ मास व कुछ वर्ष व्यतीत होने दो–एक महान् विप्लव की आँधी सायँ–सायँ करती चली आ रही है, जो पचासों वर्ष तक भारत को दिवाली के दीये न जलाने देगी, परन्तु उसके बाद जो दीये जलेंगे, वे क्षुद्र मिट्टी के टिमटिमाते दीये न होंगे, वे होंगे रत्नदीप और उन्हें साक्षात् लक्ष्मी अपने हाथों से जलायेंगी।'' चाँद के इस फाँसी अंक में भारत ही नहीं, अन्य देशों के क्रांतिकारियों और शहीदों के विषय में अप्रतिम जानकारी सविस्तार प्रकाशित की गई। इस अंक में देशप्रेमियों को समर्पित लेख कविताएँ एवं नाटक प्रकाशित किये गये। अंक में अनेक अल्प ज्ञात या तबतक अज्ञात क्रांतिकारियों के विषय में भी सचित्र जानकारी प्रकाशित की गयी। इस अंक में प्रकाशित शोभाराम जी 'धेनुसेवक' की कविता फाँसी के तख्ते से की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

''देश–दृष्टि में
माता के चरणों का मैं अनुरागी था
देश–द्रोहियों के विचार से
मैं केवल दुर्भागी था
माता पर मरनेवालों की नजरों में मैं त्यागी था
निरंकुशों के लिए अगर मैं
कुछ था तो बस बागी था।''

भारत में अंग्रेजी राज :

वर्ष 1929 में आयी स्वतंत्रता सेनानी एवं इतिहासकार सुंदरलाल की पुस्तक 'भारत में अंग्रेजी राज' भारत में अंग्रेजी शासकों के षड़यंत्रों व अत्याचारों का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है। इस पुस्तक में प्रमाणित रूप से प्रकाशित तथ्यों को यदि भारतीय इतिहास की पुस्तकों में सम्मिलित किया जाता, तो लोगों के समक्ष सच्चाई से युक्त एक दूसरा ही इतिहास सामने आता। सुंदरलाल की इस महत्वपूर्ण पुस्तक 'भारत में अंग्रेजी राज' का प्रथम संस्करण 18 मार्च, 1929 को प्रकाशित हुआ था। पुस्तक में प्रकाशित तथ्यों से अंग्रेज सरकार में इतनी खलबली मची कि 22 मार्च, 1929 को ही अंग्रेज सरकार की ओर से ज़ब्ती का आदेश लेकर पुलिस प्रकाशक के यहाँ पहुँच गयी। तबतक इस पुस्तक के इस प्रथम

संस्करण का कुल 2000 प्रतियों में से 1700 पुस्तकें ग्राहकों के पास पहुँच चुकी थीं। जब्त की गयी 300 पुस्तकों के अतिरिक्त पुलिस ने ग्राहकों के पते हासिल कर पुस्तकें जब्त की। इस पुस्तक की महत्ता समझ महात्मा गाँधी ने 'यंग इंडिया' में इस जब्ती को 'दिनदहाड़े डाका' (क्लसपहीज त्वइइमतल) बताया। इस पुस्तक की जब्ती के विरुद्ध इलाहाबाद हाईकोर्ट में मुकदमा चला, तो सरकारी वकील ने स्वयं यह कहा कि–''चूँकि इस पुस्तक की सारी बातें सच्ची हैं, इसीलिए यह अधिक खतरनाक है।'' बाद में 15 नवम्बर, 1937 को संयुक्त प्रांत सरकार ने इस पुस्तक की जब्ती का आदेश समाप्त किया। लगभग 1500 पृष्ठ की इस पुस्तक में अंग्रेज इतिहासकारों, गवर्नरों के पत्रों, ईस्ट इंडिया कंपनी की रिपोर्टों में मनमाने ढंग से परिवर्तन करते थे और आपत्तिजनक तथ्यों को होशियारी से दबा देते थे। सुंदरलाल ने अपनी इस पुस्तक में लिखा है मात्र भारतीय राजाओं के चरित्र हनन का ही नहीं, वरन् उनके गलत चित्रों का प्रयोग भी अंग्रेज इतिहासकारों ने अपनी पुस्तकों में किया। सुंदरलाल ने अंग्रेज इतिहास लेखक सर जॉन कवे को उन्हीं की पुस्तक से एक उद्धरण प्रस्तुत किया है, जिसमें कवे ने स्वयं यह स्वीकारा है कि भारतीय नरेशों और उनके उत्तराधिकारियों को उनका झूठा इतिहास लिखकर कलंकित करना अंग्रेजी रिवाज है। सुंदरलाल ने अपनी इस पुस्तक में बताया है कि अंग्रेज किस प्रकार छल और गलतफहमी फैलाने में निपुण थे। मीर जाफर के संदर्भ में 10 नवम्बर, 1760 को कलकत्ता में अंग्रेज अफसरों की एक सभा हुई, जिसमें अंग्रेज अफसर हालवे का लिखा एक पत्र पढ़ा गया और मीर जाफर को अनेक लोगों की हत्या का दोषी बताया गया। मीर जाफर की मृत्यु के पश्चात् क्लाइव और उसके साथियों ने सन् 1765 में कंपनी के डाइरेक्टर्स के नाम एक पत्र लिखा और सूचित किया कि जिन हत्याओं का इल्जाम जाफर पर लगाया गया था, वह सब झूठा था, यही नहीं, जिन स्त्री–पुरुषों की हालवेल के पत्र में सूची दी गयी थी और कहा गया था कि मीर जाफर ने उन्हें मरवा डाला, सिवाय दो के, उनमें से सब इस समय जिंदा हैं। (स्मजजमतं ककतमेमक जव जीम भ्वदइइसम बवनतज व िक्पतमबजवते इल ब्सपअम ंदक व्जीमतेए ।ज बजवइमतए 1765)। सुंदरलाल ने अपनी पुस्तक में यह प्रमाणित किया है कि अंग्रेजों के समय सन् 1851 से 1934 तक कुल 5 करोड़ 76 लाख पाउंड यानी तत्कालीन लगभग 75 करोड़ रुपये 'होम चार्जेज' के नाम पर भारत से इंग्लैंड भेजे गये थे। इस रकम के बदले भारत को कुछ प्राप्त नहीं हुआ था। सुंदरलाल की पुस्तक 'भारत में अंग्रेजी राज' के चौकानेवाले ऐतिहासिक तथ्यों को स्वतंत्रता के पश्चात् इतिहास की पुस्तकों में सम्मिलित क्यों नहीं किया गया, यह शोध का विषय है, यद्यपि स्वाधीनता के पश्चात् प्रकाशन विभाग, भारत सरकार द्वारा इस पुस्तक का प्रथम प्रकाशन जुलाई, 1960 में किया गया। इस पुस्तक के परिप्रेक्ष्य में देखें तो कह सकते हैं कि आज जो इतिहास हम पढ़ रहे हैं, वह पूर्णतः अप्रामाणिक तथा असत्य है। पुस्तक में उद्धृत यूरोपियन विद्वान फ्रैटन का यह कथन महत्वपूर्ण है–''कितनी आसानी से उन झूठे कलंकों का प्रचार किया जाता है, जितने शौक के साथ लोग उन्हें पढ़ते और सुनते हैं और जिन बातों को गढ़ लेने या फैलाने में कुछ भी खर्च नहीं होता, किन्तु जिनका पूरी तरह खंडन करने में जिंदगीभर मेहनत और ऐसी परिस्थिति की जरूरत होती है, जिसका मिलना करीब–करीब नामुमकिन हो जाता है।'' कहा जा सकता है कि प्रचलित झूठे इतिहास के समक्ष सुंदरलाल का प्रामाणिक इतिहास ग्रंथ 'भारत में अंग्रेजी राज' फ्रैटन के उक्त कथन का सशक्त उदाहरण है।

देश की स्वतंत्रता से पूर्व की ये तीनों महत्वपूर्ण प्रकाशन या इनका कोई अंश भी किसी पाठ्यक्रम में सम्मिलित हो, इस लेखक की जानकारी में नहीं है। अपने–अपने प्रकाशन वर्षों में इन तीनों ही क्रमशः दो अंकों व ग्रंथ को छापना, वितरित करना व समग्रतः इनके प्रकाशन का उत्तरदायित्व लेना कितना दुष्कर तथा साहसिक रहा होगा, इसकी अनुभूति सहज नहीं की जा सकती। हम स्वयं इन्हें पढ़ें और अपनी भावी पीढ़ी को इन तीनों की जानकारी दें, तो प्रकारान्तर से यह भी देशप्रेम ही होगा।

साहित्यिक समाचार : पुस्तक लोकार्पण समारोह

गंगटोक (सिक्किम) : 27 मार्च, 2022 को नेपाली के वरिष्ठ कवि एवं अनुवादक अमर बानियाँ 'लोहोरो' की चर्चित काव्यकृति 'दृश्य और अदृश्य' का विमोचन काव्याक्षर प्रकाशन के ध्वजाधीन नेपाली साहित्य परिषद् गंगटोक सभागार में भव्यता से किया गया। सिक्किम के जाने–माने अनुवादक एवं संपादक सुवास दीपक ने इस कृति का नेपाली से हिन्दी अनुवाद किया है, जो उत्कृष्ट बन पड़ा है। इस अवसर पर निर्मल–वालिया के काव्य संकलन 'शिखर' तथा 'समय सुरभि अनंत' रजत जयन्ती विशेषांक (संपादक, नरेन्द्र कुमार सिंह, बेगुसराय, बिहार) एवं कुछ अन्य कृतियों का लोकार्पण भी किया गया।

कार्यक्रम के मुख्य अतिथि डॉ. अमर सिंह बधान (चंडीगढ़) ने अपने वक्तव्य में कहा कि ये विमोचित कृतियाँ शब्दशिल्पियों द्वारा अथक मानसिक श्रम एवं प्रेरण से सृजित की गई है। उन्होंने स्पष्ट किया कि अमर बानियाँ एक संतकवि हैं, सच्चे काव्य साधक हैं। 'दृश्य और अदृश्य' संग्रह के हर शब्द में अर्थ का दीपक जलता रहता है, जो पाठकों के अंतर्मन को प्रकाशित करता जाता है। उन्होंने आगे कहा कि इन कविताओं की अपील वैश्विक है, जिसमें विश्वशांति, मानवतावाद, नैतिकता, पर्यावरण एवं प्राकृतिक वैभव पर अधिक आग्रह है। चूँकि कवि ने अपनी रागात्मक दृष्टि को जीवन में ही खोजा है, अतः इन अमीर कविताओं को लंबे समय तक याद किया जाएगा। 'समय सुरभि अनंत' का रजत जयन्ती विशेषांक संपादक नरेन्द्र कुमार सिंह की 25 वर्ष की कठोर साधना का प्रतिफल है। 'शिखर' काव्य संग्रह कवयित्री निर्मल वालिया के अध्यात्म–दर्शन का शिखर है।

विमोचित कृतियों पर डॉ. आशिष कंधवे, सुश्री कोमल, मणिका शर्मा और उषा शर्मा ने भी अपने प्रेरक विचार व्यक्त किये। यशस्वी साहित्यकार एवं अनुवादक सुवास दीपक ने वर्तमान समय में अनुवादक की वेदना को उजागर करते हुए कहा कि अनुवादक को प्रतिष्ठा एवं मान्यता मिलनी चाहिए। कार्यक्रम के अध्यक्ष प्रो. रुद्र पौड्याल ने 'दृश्य और अदृश्य' के काव्यसौंदर्य की मीमांसा की। कवि अमर बानियाँ ने अपनी कविता की रचना–प्रक्रिया एवं काव्यविधान पर गहरा प्रकाश डाला। समारोह में मुख्य अतिथि, अध्यक्ष एवं अन्य साहित्यकारों को उनके साहित्य सृजन के लिए काव्याक्षर प्रकाशन की ओर से सम्मानित किया गया। कविता पाठ प्रस्तुति से सभी मंत्रमुग्ध हुए। मणिका शर्मा ने कार्यक्रम का शानदार संचालन किया। नेपाली–हिन्दी माहौल में साहित्यकार, कलाकार, उच्च प्रशासनिक अधिकारी, पत्रकार एवं समाजसेवी बड़ी संख्या में उपस्थित थे। दीप प्रज्वलन एवं सरस्वती वंदना से प्रारंभ हुए इस समारोह का टी.बी. चन्द्र सुब्बा के धन्यवाद ज्ञापन से समापन हुआ।

सुसंभाव्य
प्रकाशन

कार्यालय

भवानी कॉम्पलेक्स, पटल बाबू रोड
गुरुद्वारा गली के सामने, भागलपुर (बिहार)
Mob.: 9931240303